सुकांत के सपनों में

कविता प्रकाशन, बीकानेर

सुकांत के सपनों में

मालचद तिवाडी

प्रकाशक कविता प्रकाशन तलीवाड़ा, बीकानेर

संस्करण प्रथम 1987

मूल्य पैंतीस रुपये मात्र

मुद्रक विकास आर्ट प्रिंटर्स शाहदरा दिल्ली 32

SUKANT KE SAPNO MEN (Short Stories)

By Mal Chand Tiwari Price Rs 35 00

अपनी चदा के लिए

क्रम

पल बीत जाते हैं—हमारी धुंधली आँख के आगे। इस मौज पर तो दाद कोई!

देखो यहाँ मत हँसना। बात दूसरी है। हाँ, डॉक्टर नहीं आया। तुमने बड़े बड़े थक कर दीवार की टेक ली, तो मैं समझ गया कि तुम मत थाम हो पर देह नहीं थमती। रोगी थी तुम्हारी देह। इसी रोगी देह में मैंने उस दिन कामना की गूंज सुनी। तुमने आसमानी ब्लाउज के साथ सलेटी रंग की मिडी पहन रखी थी। मिडी के घेर पर आसमानी बॉर्डर था जिसने तुम्हारी पोशाक को उतना ही सप्राण कर रखा था, जितना मुसकान तुम्हारे चेहरे को करती है। लम्बे केश एक तरफ निकालकर तुम ने वेणी गूँथी थी, जिसके लटकते छोर पर रिबन का सफेद फूल था। कुल मिलाकर तुम्हारा समूचा अस्तित्व इस साक्षात् संदेश जैसा था कि कामना ही सर्वस्व है जो आदमी को जीने के अहसास से अछूत, कीड़े से अलहदा रखती है।

तुम्हें मालूम है? शायद हो कि कामनाओं का होना कुछ नहीं होता। आदमी को उनकी भरपूर देखभाल करनी पड़ती है। उन्हें वैसे ही लाड़ दुलार और डाँट फटकार की दरकार होती है जैसे आदमी की औलाद को, आदमी की कामनाओं के बदचलन आवारा होने का खतरा उसकी औलाद से कहीं बढ़कर होता है।

"आओ, चलकर बैठ जाएँ मैं तुम्हें रोगी प्रतीक्षालय में ले आया।

लाल पत्थर की थोड़ी सीढ़ियाँ पारकर हम भीतर आए। भीतर अस्पताल की जानी पहचानी बदबू तर रही थी जो गंदी दीवारों के बीच ज्यादा ही तेज लगी। छत इतनी ऊँची थी कि ऊपर देखने पर मजा आया। इसके कोने में जाले और बीच में धूल स्नात पंखा बंद हालत में लटक रहा था। या ही, इस पंखे की तुलना मैंने मरे हुए मूनगे के साथ की, तो तुम हँसी नहीं दबा सकी। अहाते के दोनों बाजू में लम्बी बेंचें थीं। हमारे बीच से होकर लोग आ जा रहे थे।

हम बेंच पर बैठे थोड़ी देर हुई कि वह आ पहुँची। हाँ, उसी की बात है—वह पीली चूनरीवाली! याद आया उसका बड़े बड़े नीले बूटोंवाला

छींट का घाघरा ? एक बार देखते ही तुम्हारी आँखें जुड़ा गई थीं।

साथ में एक मझोले कद काठी की बूढ़ी औरत थी। काले घाघरे पर मटमैले लुगड़े का पहनावा उसके वैधव्य का सूचक था, जिसकी न जाने कहाँ से वह अभ्यस्त सी लग रही थी। पीली चुनरीवाली इस बुढ़िया की गोद में कुछ देर लुढ़की पड़ी रही, फिर आँखें मूंदकर सो गई। कहीं से एक आदमी उनके पास आया। तीस पैंतीस की अवस्था का और शक्ल से उजड्ड, जिसने फिजूल उतावल में लड़की की नाड़ी टटोली और चला गया। जाते हुए मुझे इसकी बत्तीसी की झलक मिली। दांत इतने पीले थे जैसे मुँह में हल्दी घुली हो।

तुमने यों ही पूछा था कि यह इस पीली चुनरीवाली का क्या हो सकता है ? फिर तुम बोली कि ठीक होने पर यह पीली चुनरीवाली बड़ी सुंदर लगेगी। मैंने बुढ़िया की गोद में पड़ा उसका मुंह गौर से देखा। वह प्रायः अचेत थी। उसके मुंह से लार बहकर सूख चुकी थी। मक्खियां मंडरा रही थीं और उघड़े सिर के रूखे बदरंग बाल बिखरे पड़े थे।

"पानी " सहमा लड़की ने कराह भरी।

"पानी ?" बुढ़िया ने बदहवासी में इधर उधर देखा और पुकारा, "रामरिखिया ओ रामरिखिया रे !"

"ए डाक्टरी ! क्यों हाँर मचा रही है ? यह खेत नहीं है, समझी ?" बुढ़िया के दो तीन बार पुकार चुकने पर एक कम्पाउण्डर निकला और उसे धमकाकर गायब हो गया।

"तुम जाओ, उठो !" तुमसे रहा नहीं गया। तो मुझे कोंचकर बोली, "बुढ़िया को पूछो, क्या चाहती है।"

तुम्हें नहीं मालूम कि मैं सिर्फ तुम्हारे कहने की राह देख रहा था। तब भी मैंने तुमसे पूछा, "मेरे पीछे तुम अकेली ।"

"जाओ न, मैं अकेली कहाँ हूँ? लोग जो हैं। जाओ!" तुमने यों तुनक कर कहा, जैसे सारा कसूर मेरा हो।

मैं बुढ़िया के पास गया। थोड़ी पूछताछ की और बर्तन लेकर पानी ला दिया।

"पीली चुनरीवाली को क्या हुआ है?" पानी देकर लौटा तो तुमने

बेसब्री से पूछा।

"सुनोगी?"

"बताओ न!" तुम्हारी बेसब्री बढ़ने लगी।

"सुनो।" मैं धीमे धीमे बताने लगा, "लड़की का छ माह का गर्भ था। कल इसके पति ने पेट पर लात मार दी। खून बहने लगा। रात तक हालत बिगड़ गई तो ऊँट-गाड़े म डालकर गांव स यहाँ लाए हैं। अब डॉक्टर की राह देखी जा रही है।"

"यह यह आदमी कौन था?" तुमने पीले दाँतोवाले के बारे में सहमकर पूछा।

"लड़की का सगा चाचा। बुढ़िया न कहा कि इसे जरा भी मोह ममता नहीं है, बस, लोक लाज से चला आया है।"

"लड़की का बाप?"

"बुढ़िया न कहा कि कोई महीना भर पहले उसे खेत म साँप डसा था गाव म झाड़ फूंक म पार नहीं पड़ी, सो इसी अस्पताल म लाए थे। यहाँ पहुँचने तक सास बाकी थी, पर डाक्टर ने छूत ही सिर हिला दिया था। आज लड़की का क्या होगा। बुढ़िया को यही चिन्ता है।"

बुढ़िया की गाथा म डूबकर मैं देख ही नहीं पाया कि तुम्हारी आँखें छलछला आई है। तुमने रुँधे गले से पूछा, "गाँव मे कुछ भी इलाज नहीं?"

इसकी जरूरत क्या है?' तुम्हारे ऐसे मासूम सवाल पर अनजाने ही मैं चिढ़ गया था, "इन डाक्टरो की राय है कि गाव की आबो हवा म कोई बीमार हो ही नहीं सकता। य, य सबके सब ढोगी है।" कहकर मैंने अपनी तर्जनी तमाम गँवई मराजो पर लहरा दी थी।

तुमने गर्दन झुकाई। फिर रूमाल सटाकर तुमने अपने आसू आखो म ही रोक डाले।

"डाक्टर सा'ब आ गये!"

"डाक्टर सा'ब आ गये!"

समवेत स्वर उभरने लगा। भीड़ हड़बड़ाई और पलभर में डाक्टर के कमर पर लपककर छात की नवज म जमा होने लगी। पीली चुनरी

वाली बेहोश थी। बुढ़िया भिनभिना रही थी जिस पर ध्यान देने की फुर्सत किसी को न थी। यहाँ तक कि हमें भी उठना पड़ा।

अस्पताल से लौटने तक तुम एकदम निढाल हो गईं। तुम्हारी आँखों में रुलाई फूटने का अंदेशा था। हलकी-फुलकी बातों में उलझाए मैं तुम्हें रेस्तराँ में लाया। केबिन में बिठाकर तुम्हें बहलाने के मैंने हजार यतन किए।

"सुनो, ऐ!" गाल पर हलकी सी चपत लगाकर मैंने तुम्हें पुकारा।

"ऊँ ऽ। क्या करते हो?" तुम सुस्ती छोड़ने को तैयार नहीं थीं।

"कुछ याद करोगी?"

"क्या?"

"अस्पताल की सीढ़ियाँ और फर्श।" मैं बोला।

"क्या मजाक करते हो। वे क्या याद करने लायक हैं?" तुमने उकताकर कहा।

"हाँ है। तुमने देखा, लोग अस्पताल में आकर कैसे डर-सहम हो जाते हैं। उनके पैर उठने की बजाय घिसटने लगते हैं।" याद करो, सीढ़ियाँ और फर्श बीच से किस कदर घिसटकर रह गये हैं। फिर कुछ थमकर मैंने जारी रखा, "सिर्फ एक ही आदमी को मैंने पैर उठाकर चलते देखा था। लेकिन वह भी सामने से गुजरा, तो उसकी पोल खुल गई। बेचारे के एक पैर में चप्पल ही नहीं थी। टूटी हुई चप्पल उसने हाथ में लेकर पीठ-पीछे छिपा रखी थी। मारे शर्म के वह भाग रहा था। उसकी झेंपी सूरत देखती, तो तुम हँस हँसकर अपना बुरा हाल कर लेतीं। मैं तुम्हें दिखाता, अगर उस पीली चुनरीवाली के फेर ।"

बात के अंत में मैंने आँखें नचाकर तुम्हें भरी आँखों से देखा। मैं समझ रहा था कि तुम्हें हँसाने का मेरा यह अंतिम और अचूक उपाय अब जरूरी है।

तुमने नजर उठाई। कंजूसी से होंठ खोलकर धीमे से हँसीं। खुशी और शिकायत की तुम्हारी यह सांझी अदा है जिसे तुम खुद देख लो तो अपने पर तुम्हें उतना ही प्यार आएगा जितना मुझे। मैंने विभोर होकर अपना हाथ तुम्हारी तरफ बढ़ाया। तुमने अपना मुखड़ा मेरी हथेली पर टिका

दिया।

"चाय मे मक्खी न पड जाए, भैया जी !"

काउण्टर पर से चिल्लाकर शायद किसी ऊँघते ग्राहक को सावधान किया गया। हमें भी हास आया। हमारी चाय भी अनछुई पडी थी। कुछ पहले वेयरा रख गया था।

"तुम बहुत बदमाश हो !" भावावेश म मुझे तुमने आज पहली बार 'तुम' कह डाला और बुरी तरह झेंप गइ।

"और तुम शरीफ? एक फल होता है—शरीफा। खाने म बडा लजीज पर ऊपर से खुरदुरा।"

अबकी तुम खुलकर हँस दी, ऐसे कि फश पर नयी बाजरी के दाने बिखर रहे ह। मैं इतराया और मेज के पार तुम्हारे एकदम करीब चला आया। मैंने तुम्हारे कधे पर हाथ रखा, तो तुम उसे थामकर लिपट सी गइ। मुखडा तुमने मेरी बाह से सटा दिया। मैंने देखा कि एक जोडी कमल फिर चू पडे ह।

"अना !" मैंने तुम्हें यही नाम दिया। याद है चेखव की कहानी—कुत्ते वाली महिला ! मैंने तुम्हे यह कभी पढकर सुनाई थी। तुम्ह इसकी नायिका का नाम मैंने क्यो दिया ?

तुम सचमुच रो रही थी। मैंने तुम्हारा भीगा मुखडा अपनी हथेलियो के दोन मे भरकर तुमसे पूछा "हँस रही थी या सिफ हँस हँस कर आसू बहा रही थी ?'

'वह पीली चुनरीवाली शायद उसको खून चढेगा। वह बच जायगी ?" रोते रोते तुम पूछने लगी।

मैं क्या बताता ?

"कबिन छोडिय ग्राहक इतजार कर रहे ह। काउण्टर से आवाज लगी। हम उठना पडा।

मैंने तुम्ह बताया नही मैं काउण्टर पर पैसे चुकाने रुका, तो हमारी चाय लेकर कैबिन मे आनेवाला लडका मेरी तरफ आँख मारकर मुस्कराया था। पता नहीं, मुझे किस सगीन सफलता पर बधाई दे रहा था। हँसा, यहाँ भी हँसो और कहा कि मेरी बातें तुम्हारी समझ म नहीं

आती—बस, उन पर हँसी आता है।

जो हो, पीली चुनरीवाली के बारे मे तो जान लो। मैं दुबारा अस्पताल गया था। मालूम हुआ, डॉक्टर सबसे अत मे वहा तब पहुँचा जब बुढिया न चीख-चीखकर अस्पताल सिर पर उठा डाला।

सुनो, फिर क्या हुआ ?

डॉक्टर ने लडकी की बद आखें खोलकर भीतर झाका, तो मौत डेरा डाले बठी थी। स्टेथोस्कोप पहले ही चुप था। अब बेचारा डाक्टर सिवाय अफसोस मे सिर हिलाने क अलावा क्या करता ? उसने यही किया कि बुढिया ने बिल्ली की तरह झपटकर डॉक्टर का मुह नोच लिया। लाग दौडे और बुढिया को पकडा। सरत-जान बुढिया कहाँ काबू म आती ? इजक्शन देकर उसे बेहोश करना पडा।

डॉक्टर ने कहा, "बुढिया दौरे से पागल हो गई है।"

जरा तुम भी सोचना कि बुढिया पागल हो गई या ?

मुकात के मपनो मे

मेरा एक न ्हा मा वेटा है—मुकात, वेहद नटखट और अथाह जिज्ञासु। उसमे मवालो और बेमब्री से मगना है, आज और इसी पल वह सब-कुछ जानना चाहता है। वह जागता है तब तक उसके मुह से मवालो की झडी लगी रहती है। मैं उसक भविष्य से बहुत आनन्दित हू क्योकि जानता हूँ, सवाल उठाना, ुनिया म सुख से जीने नही देता।

इन दिना मेरे नहर के चोफेर फैले मरुस्थल मे भारतीय थल सेना अभ्यासरत है। रोही से आती फौजी ट्रको और टैंका की घराहट से हरदम मेरा आगन और पिछवाडा गूजता है। राशन और दूसरे सामान के बहाने फौजी जीपा की शहर म भी आमद रफ्त होती है। कई फौजी अपनी बदूका समेत भी नजर आते हैं। सुकात आते जाते इनको देख चुका है और फौजी और बदूक दाना को पहचानने लगा है।

'पापा, फौजी बच्चा को उठाकर ले जाते है?' परसो रात उसने नीद से पहले, रजाइ म बठे बठे अचानक मुझ से पूछा।

'नही बेटा। किसने कहा ?"

'सीमा।' सुकात ने बताया 'वह कहती है कि फौजी बच्चा को अपनी मोटर म डालकर ले जात हैं।"

मैंने उसे गौर से देखा—भय की परतें उसके मुह पर उघडने लगी।

'कुछ दर मुझे सोचने म लगी, कि उसके भय को धो पाछकर कसे परे करूँ। मैंने कहा, "नही बेटा, फौजी, बेचारे तुम्हे क्यो उठाकर ले जाएग। उनके ता अपन ही तुम्हारे और सीमा जैस प्यारे प्यारे, भोले भोले बच्चे होते हैं।'

सुकात ने मेरी तरफ देखा, तो निश्चित हो गया कि मेरी बात उसके भीतर नहीं उतरी। वही हुआ, उसने अगला सवाल छोड़ा, "फौजी किसे मारते हैं, पापा ?"

"किसी को नहीं।" मैंने भरसक हँसकर कहा।

"तो वे बंदूक क्या रखते हैं ?"

मेरे तो समूचे ज्ञान की कलई खुलने लगी। देश की सीमाएँ, युद्ध की संभावनाएँ, आन्तरिक उपद्रव, चीन या पाकिस्तान किसी में सुकात का उत्तर नहीं था। मैं उसके लिए माकूल उत्तर ढूंढ रहा था कि उसने फिर पूछा, "बताओ न, पापा... फौजी बंदूक से क्या करते हैं ? सीमा तो कहती है, फौजी हरेक को मार सकते हैं। फौजी आपको भी मार सकते हैं, पापा ?"

सुनकर मेरे अंग अंग में सिहरन दौड़ गयी। सुकात को शांत करना पहले जरूरी था, इसलिए मैंने उसे सुलाने को कहा, "फौजी सिर्फ दूसरे फौजियों को मारते हैं। वे जब..." मेरी जबान में ऐंठन हुई लेकिन मैंने यह कहा, "वे जब अपने देश पर हमला करते हैं, न... तब।"

"देश, देश क्या होता है, पापा ?"

"देख बेटा, तू अभी छोटा है न! सब बातें समझेगा नहीं, अभी सो-जा। कल हम खूब बातें करेंगे। अच्छा, एक बात बतायेगा, कल तू ने सीमा के घर क्या खाया ?"

"खीर।" सुकात राजी होता बोला।

"अब सो जा, कल हम भी खीर बनवाएँगे।" कहते कहते मैंने रजाई लगभग जबरन उसे मुँह पर ओढ़ाई। वह इठलाता सा, मचलता सा रजाई में दुबक गया।

कोई दसेक मिनट बाद मुझे सुकात की चीख सुनाई दी। मैं जाग रहा था, उसे छाती से लगाया और पूछा, "सुकात, सुकात बेटा, क्या हुआ ? बता बेटा... तू ने क्या देखा ?"

पसीने से भीगा शरीर, उखड़ी साँस और भय से विस्फारित आँखों से उसने मेरी तरफ देखा और बोला, "फौजी ने आपको गोली क्यों मार दी, पापा ?"

मैंने हँसते हँसते उसे कहा, "सो जा सो जा सुकांत मैंने तुमसे कहा था न, कि कल अपने यहाँ भी प्यार बनाएँगे।'

और परसों पूरी रात मुझे नींद नहीं आई, फिर भी सुकांत के सपने की कोई तफ्सील मेरे हाथ नहीं लगी। आप भी कुछ अनुमान करेंगे कि मेरे सुकांत ने सपने में क्या देखा ?

खैर, इसे छोड़िये। और सुनिये सुकांत की बातें।

गये सोमवार को जब मैं दफ्तर से घर पहुँचा, सुकांत मेरी बाट जोहता मिला। घर में घुसते ही पूछा "पापा, शांति पाठ क्या होता है ?"

'शांति पाठ ?'

मैं भौंचक रह गया कि इस कोमल बच्चे के दिमाग में इतना विकट पाठ कैसे घुस पड़ा। कोई समाधान जरूरी था, सो मैंने समझाया, "हम सब हिल मिलकर रहें, लड़ें झगड़ें नहीं और कोई दुखी न हो, तो शांति पाठ उसको कहते हैं।"

"अ = आपको मालूम भी नहीं।' सुकांत ने दो टूक कह डाला।

"तो फिर तुम बताओ।" मैं मुलक कर मुसकुराया।

'मेरी स्कूल में है न बहनजी हैं न, हम सबकी आँखें बंद करवाकर, हाथ जुड़वाकर लाइन में खड़ा करती हैं और कहती हैं, चुपचाप खड़े रहो शांति पाठ करो। इसे कहते हैं शांति-पाठ!'

मुझे जोर से हँसी आयी। हँसकर मैंने देखा कि सुकांत रोने लगा है। रोते रोते उसने बताया "पापा, लड़के रोज शांति पाठ में मेरे पीछे से चिकोटियाँ काटते हैं। कहते हैं—आँखें बंद, आँखें बंद नहीं तो बहनजी मारेंगी। शांति पाठ में आँख बंद न हो तो बहनजी क्या मारती हैं पापा?"

आप यह बताइए कि मैं सुकांत को क्या बताता ?

कोई शांति पाठ पढ़ते हुए मार से आतंकित रहे, यह क्या बर्दाश्त करने जैसी बात है ?

और एक दिन यही सुकांत धूप में बैठा था। मेरी तरफ उसकी पीठ थी। मेरा ध्यान गया कि बहुत देर से वह अविचल और शांत बैठा है। यह अविश्वसनीय बात थी। मैं धीमे से चलकर उसके पीछे गया और देखने लगा कि वह कहाँ उलझा है।

उसके दाये हाथ म एक बॉल पेन थी जिसे वह हाफ पैण्ट स नीच अपने ना घुटने पर अधाधुध चलाता जा रहा था। कुछ दर देखकर मैंने उस दुलारते हुए पूछा, "सुवान, क्या कर रहा है र ?"

"घुचघुचिये।" बिना जरा सी भी गदन उठाये, पेन चलाते हुए सुवात बोला।

"और इस घुटन पर क्या किया ?" मैंने उसके दूसरे घुटने पर स्याही देखकर इशारा किया।

"घुचघुचिये।" वह फिर उसी तरह बाल गया।

"तो फिर दुबारा क्या कर रहा है ?"

"पहले गलत हो गये पापा।" उसने इस बार गदन उठाई और मुझसे आँखें मिलाकर रहस्य बता डाला।

मैं स्तब्ध रह गया सुनकर कि इस नानायक के सवाल ही नहीं, जवाब भी खतरनाक हैं।

आहट

"अरे ! रुघला ऊ ।" टिकुडी हाथ भर ऊंची खाइ म फांदकर बाहर निकली और फावडा हाथ से फेंककर आलू के खेत मे खडे रुघले को जोर से पुकारा।

"तू खाई पूरी करके ही रोटी पाएगी क्या ?" रेत और आंच से बदरंग अपने छोटे छोटे पैरा स दौडता रुघला आ धमका और अपनी बहन की सभावित रीस स बचा के लिए बहाना घड डाला जसे।

'खाई के मनकाये ! उस आसिए स क्या कह रहा था ?" टिकुडी पर रुघले की चतुराई बेअसर गुजरी और उसने लपककर उसका कान पकड लिया, "बोल, जल्दी से बोल कान निकालकर हाथ म दे दगी तेरा !'

'वह पूछ रहा था, आज अपने खेत मे कौन कौन रहगा ?' पीठ से मुह मचकाडता रुघला बोला।

'तूने क्या बताया ?"

बताया कि तू अकेली रहेगी

मर, जाकर झापडे के आगे बैठ, कागले (कौव) घडा मे चोच दे रहे होंगे।" टिकुडी न रुघल का कान इत्ती देर बाद छाडा और फिर फावडा उठाकर खाई मे कूद गई 'मरी के ! आलू के खेत के बीच नजर आते झोपडे पर उसन नजर टाली और फावडा चलान लगी।

खाई पूरी होने म जरा सी कसर समझो। टिकुडी के बापू को अचानक मादगी न न पकडा होता तो यह काम उन्ही को करना हाता। वे दो दिन पहले घर गए और वहीं रह गए। फिर मां भी उनकी टहल

घरने चली गयी। खेत म काँधे काँधे ऊँची बाजरी खड़ी थी। मोठ इत्ते घेर घुमेर कि पैर धरने की ठौर नहीं। 'डांगरा से खेत का जापता करना जरूरी है' टिकुड़ी ने सयाने किसान की तरह सोचा और आप ही आप फावड़ा उठा लिया। फिर मन में यह ललक उतरती गयी कि बापू को पता लगेगा तो कित्ती बड़ाई होगी—जबर भई टिकुड़ी खेत की इत्ती लम्बी सींव पर अकेली ने खाई द दी!

टिकुड़ी का खेत म रमते पूरा महीना बीत गया है। माँ बापू दूजे-तीजे दिन घर बहीर होत ही तो उसको चला स उसका मन तो इस मोठ-बाजरी म रम गया लगता है। हाँ, रुधला उसके पास ही रहता है। रहे तो रहे, न रहे तो भी टिकुड़ी को परवाह नहीं।

"टिकुड़ी! अब एक दिन घर जा आ। देख, तेरे डील पर कित्ता मैल जम गया है। चोखी तरह नहा धो आ, अलीमाणस!" जाते जाते माँ उसे समझाती गयी थी।

"सुण माँ, तेरी टिकुड़ी तो खेत से दाना-दाना चुगकर डेरे उठाने के बाद ही घर जाएगी।" दूर सरकती माँ को मन ही मन यह सदेश दकर टिकुड़ी ने सहम के पाँवचे टाग लिये थे और घेर घुमेर मोठ के पौधों तले उगती अनचाही घास नोचने चली गयी थी।

और यह रुधला आज सुबह से रट लगाए है कि साँझ पडे वह भी आज काके के साथ घर जाएगा।" जाए तो जा मर मुझे क्या अकली को कोई खान आएगा। हाँ, बापू से इतना अवस कह दना कि टिकुड़ी ने खाई पूरी दे दी है।" टिकुड़ी ने एक बार बोलकर, और बीस बार अपने-अपने म बड़बड़ाकर रुधले को यह नताड दे डाली थी आखिर अपने खेत मे उसे डर किस बात का!

रुधला आमू के खेत नहीं गया, तब तक कोई बात न थी, पर अब! रुधला के साथ अपने ही अचीते मे किया हुआ कठोर बताव खुद टिकुड़ी के आगे पहेली बनता जा रहा था। बात तो फक्त इत्ती ही है न कि यह मरा रुधला ठौर ठौर कह आया है कि टिकुड़ी आज रात अकेली ही खेत म रहेगी। झुँझलाहट मे और नहीं तो उसने अपना जोर फावडे पर उतारा। बची हुई दूरी को झपट झपटकर खाई पूरी की और फावड़े

पहुँच गयी। गए बरस इन्दरदेव का ऐसा ताप रहा कि छींट ही नहीं पड़ी। किसी का मेह में बनने की नौबत ही नहीं आयी। पर उससे पहले और उससे भी पहले भी ता टिकुड़ी मन म रहती थी। तब ऐसा कभी नहीं हुआ। टिकुड़ी अपने चेत पर जोर डालती जा रही थी। यह यह तो बस इसी बरस शुरू हुआ है। पास पड़ोस के सता स कोई हेमा ता कोई पेमला और यह मरा आमू उस अकली देखकर ऐसे आते हैं जसे गुड़ की भेली क पास मकोड़े !

'टिकुड़ी, मेरी दियासलाई भीग गयी दो तीलियाँ तो दे जरा।" कहता कहता हेमा उस दिन झोपड़े म आ धमका था। टिकुड़ी अपनी और रुघले की राटी पा रही थी। फिर वह बिना मनवार के ही चूल्हे के सामने बैठ गया।

"दियासलाई मेरे पास नहो है ले जाना है तो वास्तै (आग) ले जा ' टिकुड़ी ने बेमन स लाहे की कुड़छी चूल्ह मे डाली और खीरे भरकर हेमा के सामने कर दिए।

'खीरो का क्या करू ? ऐसे खीरे ता मेरे म तुझे देख देखकर ही सुलगने लगत है तू तो थोड़ा सा पानी दे दे मुझे।" हेमा गोल मटोल समझाइस करता सा बोला।

टिकुड़ी अपनी समझ मुताबिक तो समझ ही गयी। और कुछ नहीं सूझा, तो वहीं बैठे बैठे आवाज लगाई, "रुघला ऊ देख तो, काका अपने खेत मे क्या कर रहे हैं ?"

हेमा उठ खड़ा हुआ। टिकुड़ी अपनी अक्ल आप ही आप सराहने लगी। तभी आवाज सुनकर रुघला आ पहुँचा, "तूने हेला दिया, क्या कह रही थी ?"

"कुछ नहीं, तू कहा हाडता फिर रहा था ?"

"टिकुड़ी, तू हर वक्त मुझे फटकारती क्यो है ? मैं बापू से कहूँगा कि तेरे साथ अकेला नही छोड़ें मुझे।' रुघला रुआसा हा गया और अपना जाँघिया सँभालता झोपड़े से बाहर निकल गया।

ढलते ढलते सूरज किसी कुकुम से भरे जड़े थाल सरीखा हो गया और फिर जसे हाथ से छूटकर धोरे के पीछे गिर पड़ा। थाल भरी कुकुम

बिखर गयी। बाजरी के मिट्टे जो पहले साफ दीख रहे थे, अब फकत अपनी सरमराहट मे मौजूदगी जता रहे थे। एक-दो, एक ऐसे करते करते आसमान तारो मे लडालूम हो गया। रात अंधेरी थी, सो उजास म न दीखने वाले तारे भी अपना रौब जता रहे थे। तब भी तारो का उजासही कोई उजास होता है! टिकुडी को लगा कि वह आज निर्भय नही। पर उसके आगे यह भी साफ नही था कि उसे डर किस बात का है? खडे खेत म ढागर घुस जाएँ, इससे बडा तो कोई खटका ही नही होता। ढाँगरो मे अपने खेत का पूरा जापना तो उसने खुद आज ही कर डाला फिर!

"नीद नही आती तो राम-राम कर!" टिकुडी को अचानक ही दादी की बातो म से यह एक बात याद आयी। दादी जीती थी तो टिकुडी को अपने पास ही सुलाती थी। टिकुडी को देर तक जागते देखकर यह रामबाण नुस्खा बतलाती। टिकुडी ने बरसो बाद आज फिर आजमा डाला इसे। सचमुच थोडी देर म ही अपनी आखो म नीद को घेरे डालते पाया उसने।

टिकुडी की नीद का घडा पका ही नही कि ठोकर लगी जैसे, खेत की सीव की तरफ से आती जूतियो की चर-चू कानो से होकर हिये मे उतर गयी। एक तरंग-सी चल पडी उसके अन्दर। हफ करती उठकर माचे पर बैठ गयी। चौफेर नजर पसारी। अंधेरा और सुनसान। आसमान मे अनगिनत तारे पर जमी पर फकत दो ही चिनगारियां उसे दिखाई पडी, जो हिलती डुलती उसके माचे की तरफ बढ रही थी।

अब देर करे की गरज कहाँ! टिकुडी मांचे से उतरी और झोपडे म घुस गयी। गाढ अंधेरे मे भी उसे इस वक्त म सदैव लगा रहने वाला साँप बिच्छुओ का खटका नही हुआ। इसी झोपडे मे चिमनीके भर उजास म ही बिच्छू न रुघले को डक मारकर अपनी जात बता दी थी पर टिकुडी ने झोपडे म अपनी ठाई रखी जेई के लिए हाथ डाला तो झिझक नहीं हुई। उसके मन के उस अनजाने और अनदखे डर से बडे थोडे ही है ये साँप बिच्छू!

झोपडे से बाहर निकलकर टिकुडी की आँख सीव के तरफ फट पडी। उसकी अक्ल का घोडा दौडने लगा, "मरो ने पास आते आते बीडियां

11313

बुझा दी है यह पता नहीं कि यहाँ तुम्हारी माँ राड जेई लिए खड़ी है "

"माचे पर सोयी होगी !" छायायें अब ऐन पास आ गयी थीं और टिकुडी के कान इतने सजग थे कि उनकी फुसफुसाहट भी भरपूर सुनाई दे गयी।

"सोयी कहाँ हूँ, जाग रही हूँ तुम सबका भाता लिए बैठी हूँ न !" टिकुडी जितना अन्दर से डरी हुई थी उतनी ही बाहर से गरजकर बोली।

"टिकुडी " इस अचीती मुठभेड़ से भौंचक आसू आगे आया।

'मेरे हाथ में जेई है, ध्यान रखना। नजीक आए तो जादी का माहूरत पूछने नहीं जाऊँगी।" टिकुडी ने आवाज की दिशा में जेई का मुँह लहरा दिया और बेतरह गरजकर बोली।

आसू के पैर अपनी ठौर बैठ गए जैसे। टिकुडी ने उसके पीछे गड्मड होती छायाओं को भी पहचान लिया। वही दोनों थे—हमा और पमला।

"किस कमतर से आए हो सब ?"

'वो, वो हाँ, रघला है न तेरा भाई मैं तुमसे कहने आया हूँ कि वह मुझसे माँग माँगकर बीड़ियाँ पीता है।" आसू ने ही मोर्चा सँभाला।

'हाँ ?"

'अब मैं उसे नहीं दूँगा।' आसू ने दो पैर आगे रखे और मिठास घोलता बोला, "टिकुडी, तेरे साथ थोड़ी देर हथाई करने आए थे हम सब, तू अकेली है न !

'तुम तीनों अपना रास्ता ले लो " टिकुडी आगे कुछ बोलती कि अचानक ही उसका जेई थामा हाथ आसू की चौड़ी हथेली की गिरफ्त में आ गया। उसने मरोड़ लेकर छूटने की चेष्टा की तो गुंजायश पाकर हमा और पेमला भी पहुँच चुके थे।

'बैरियो मैं तुम तीनों को कुछ नहीं दूँगी " कहकर टिकुडी पूरे जोर से नीचे झुकी और भरपूर ताकत झोंककर ऊपर को झटका खाया, तो उसके दोनों हाथ उनसे छूट गए, 'पेट बींध दूँगी " उसने पलटकर

जेई का मुंह सीधा कर अंधाधुंध चलाना शुरू कर दिया।

टिकुडी न पाया कि सामने जैसे कोई है ही नही। वह जब जेई चला रही थी, तभी तीनो छायाओ ने अपने-अपने माथे भिडाए और पलटकर सीव की तरफ सरकने लगी थी।

"बात तुम मुर्दों को मेरे बापू को आने दो " टिकुडी अँधेरे मे अनुमान से उनके पीछे नजरें दौडा रही थी और उनकी जूतिया की चर-चू को ही गालियाँ सुना रही थी। आखिर हाँफकर माँचे पर बैठ गयी। जेई को माँचे की ईस से टिकाकर सास लेने लगी। सास सँभली तो बतरह गरमी लगने लगी। लगा कि परसेव से नहा गयी है। यू ही बैठे बैठे उसकी रुलाई फूट पडी अपनी दोनो हथेलिया से अपनी दोना आखें ढाप ली टिकुडी ने।

तारे अपनी चाल चलते गए, रात अपनी चाल। टिकुडी की आखा मे फिर नींद नही लौटी। वह कुछ देर माँचे पर पसरे रहती, फिर उठकर बठ जाती। उसकी इस उठ बैठ मे ही पूरब की तरफ से सूरज ने अपना मुँह निकाल लिया। धार, झोपडे, रूँख-बाड, धडे और आसपास की हर चीज उजास मे धीमे धीमे चक्ख होने लगी और रोही की खिडकियो ने चोच खोल खोलकर उजास का जस गाना शुरू किया। टिकुडी को अब जाकर पूरा ध्यावस हुआ। उसकी नजर दूर धोरा के बीच से आते कच्चे रास्ते पर बँधकर रह गयी। पहली, दूसरी या पता नही किस गाडी म घर स कोई जरूर आ जाएगा। उसने मन ही मन बापूजी को सिवरण की, कि आज बापू ही ठीक होकर खेत आ जाएँ।

टिकुडी पूरी रात मन ही मन अपना यह निश्चय दोहराती रही थी कि इन मरो की शिकायत आज वह बापू के आगे जरूर करेगी। य यू ही नही मानेंगे। बापू की एक दकाल पर ही इनका पित पाणी थिर हो जाएगा। गाडियाँ आने लगी थी। एक, दो पाँच, सात पता नही कितनी गाडियाँ गुजरी कि अचानक उसे अपनी गाडी आती दीख पडी। और भी भली बात यह थी कि गाडी को बापू चला रहे थे। जान क्या हुआ कि बापू का चेहरा जैसे ही पास आता जान पडा, टिकुडी की छाती दहलने लगी। वह यह क्या कहेगी बापू स? लगा जैसे खुद अपने से ही कोई

बजा बात हो गयी है। यही कहेगी कि आसू, हेमा और पेमला न मिलकर तेरे साथ क्या किया तेरे साथ।

टिकुडी का लगा कि उसे लाज आ रही है। लाज और टिकुडी का! ऐसी टिकुडी का जो खेत म मर्दो से बढकर मेहनत कर और गरज पड तो सब चौहे खेत का अपने ही बूते पराट ले। बापू क्या सोचेंग? पर टिकुडी को अपन आग आज पहली बार हार माननी पडी कि उस बापू क आग यह कहस लाज आन स नही रहेगी। नहीं, वह कुछ नहीं कह सकेगी। टिकुडी न वही खडे खडे अपन पूरे शरीर का जैसे छिपकर निहारा और बुरी तरह लजा गयी। यह, यह क्या हो गया उसे।

यह तो खुद उसन कभी मीठ जाडकर बात नही की, नहीं तो नहा तो क्या? एक अजब मीठी मीठी झुरझुरी दौडती जान पडी टिकुडी को अपने शरीर म। उस दिन पमला आया या न! कहने लगा, 'टिकुडी, आज हरिराम बाब के परसाद चढाया था। ले, तर लिए इत्ती सारी परसादी लाया हूँ।' पर टिकुडी न कहा ली थी परसादी! मन म बाब के दोष का डर लगा पर परसादी के पडो पर टिकुडी का मन क्या नहीं ललचाया? उधले न बडे चाव स पेडे खाए टिकुडी अबोल रीस म भरकर दखती रही फकत।

गाडी कब खेत म पहुँची और कब झोपडे क आगे जाकर ठहरी, टिकुडी को इस धुन म कुछ पता नही लगा। बल न थमत ही जोर स गदन हिलाई तो गले म बधा टणकारा टणन्टण बजने लगा।

"टिकू बेटा, खडी ही रहेगी या गाडी का सरजाम भी उतारेगी?" बापू न उस पुकारकर पूछा।

तभी उसन गौर किया उधर। बापू क साथ ही गाडी से उतरकर यह कौन खडा हो गया? टिकुडी न क्षण एक को छोटी अवस्था म उस छहरी यारू का देखा और गाडी म रखी आडी उठान आग बढ गयी। न आज वह बापू को देखकर सदैव की तरह अनमाप हुलस से दौडी और न ही उतावले बोलो म मन म किए अपन कौरत का बखान कर सकी। बस, सयानी सी आयी और आडा उतारकर मायडे म रख आयी। फिर पानी क घडे बापू उतारकर मजबा तले छाया म रखन लगा। टिकुडी न तो यह तक नहीं

पूछा कि बापू आज किसे साथ ले आए हैं ?

"यह अपने मोहन का भायला है, शहर से आया है।" बापू ने उस शहरी बाबू के कंधे पर हाथ रखकर बताया, "खेत देखन के चाव से आया है।" यह कहते ही जाने क्यों बापू को हँसी आ गयी।

टिकुडी ने माचा लाकर झापडे की एक तरफ पड़ती छाया में बिछा दिया। शहरी बाबू ने जैसे आसपास कुछ देखा ही नहीं, अपने में ही लीन-सा माचे पर बैठ गया। टिकुडी उसके कस काठे कपड़े जैसे छिप छिपकर देख रही थी।

रात की बात जैसे उसके चित्त से सरक चुकी थी।

तीन दिन बीते।

मोहन का वह शहरी भायला अभी भी खेत में था। वह दिन-भर छाया खोजता अपना माचा एक ठौर से दूजी ठौर घीसता रहता और कच्चे मतीरे फोड़ता रहता। उसकी हर बात को टिकुडी अचम्भे में भर भरकर देखती रहती, पर जानती कुछ नहीं। उसका ट्रांजिस्टर, जो टिकुडी को अपने गाँव के नाई की रछानी (हजामत पेटी) जैसा लगा था, उसके लिए बोल-बतल का साधन था जैसे। दिन भर उसकी सुई चलाता रहता।

"मुझे मतीरे के कच्चे पक्के का पता नहीं लगता, बेटा तू टिकुडी को कहकर मतीरा मँगवा लिया कर।" बापू ने उसे पहले ही दिन समझा इस कर दी थी, पर वह था कि टिकुडी को जैसे कुछ समझता ही नहीं। वह पास खड़ी होती तो भी कच्चा मतीरा बेल से झटक लेता और अनाड़ीपन से उसे फोड़कर कच्ची सफेद गिरी देखता और फेंक देता।

टिकुडी को रीस आती, 'कहाँ से आया है यह डफोल कहीं का! मोहन के साथ शहर में पढ़ता है, मतीरा परखने को तो शऊर ही नहीं।" मन करता कि जैसे ही बेल में हाथ डाले, लपककर पकड़ ले और कह डाले "लाडेसर, लड्डू नहीं मतीरे हैं, बहुत तपन में निपजते हैं, खबरदार, जो कच्चे तोड़कर खराब किए तो!" पर कहाँ पायी वह ऐसा!

बापू निनाण में जुट गए। टिकुडी भी पाँयच टाँगे, कम्मी पामे उनके साथ लगती, पर रोटी पानी तो झापड़े में आना ही पड़ता। तब वह दावनी

अपने मोहन के भायले को। इसको तो बडा गुमान है वह सोचकर रह जाती। एक वे तीनो हैं जो उससे दो बाल बोलने को नित नय बहाने रचते फिरते हैं और एक यह कि मीट ही नही जोडता ! टिकुडी के अपन खेत म आर उसी से ऐसी बेरुखी। रीसभरे अबोलपन से बँटकर रह जाती टिकुडी। अबस साचती कि बापू से कहकर इसे खेत से निकलवा क्यो नही देती !

'रोटी जीम ले।" यह फकत सोचना था। कहने मे रोटी पोकर यही कहा टिकुडी ने।

वह करवट लिए माचे पर पडा था। उसकी रछानी बज रही थी। उसन शायद टिकुडी की आवाज सुनी ही नही। टिकुडी की रीस बिसवा-नर ऊपर निकल आयी। झपटकर आगे बढी और रछानी का काई बटन फेर दिया।

"इत्ती बेर हो गइ तुझे बुलाते !" उसके पलटकर दखते ही टिकुडा बोली पर आग के बोल उसक मुह में ही ठहर गए—बहरा है क्या ?

माहन के भायल न मोहन की इस गँवार बहन को पहले-पहल दखा जैसे और कुछ दर ताककर हँस पडा। टिकुडी को भी हँसी आ गयी और फिर लाज !

फुर्ती से झापडे की तरफ पलट गयी टिकुडी।

"तू मोहन का भायला है ?' रोटी साग और दही परोसकर टिकुडी ने थाली उसक आग सरकाई और पूछ लिया।

हाँ तू उसकी बहन है ?' उसन रोटी निगलते हुए पूछा।

यह भी कोई पूछने की बात है ! टिकुडी को बडा अटपटा लगा उसका यह पूछना। क्यो क्या कसर है उसम ! क्यों नही हो सकती वह माहन की बहन ? यह तो इसीलिए पूछ रहा है न कि माहन शहर में रहकर नहरिया जैसा दीखने लगा है और वह टिकुडी का मन हुआ कि इसी वस्त दौडकर रान क कुड मैं घिर पडे पानी म अपनी छवि निहारे जाकर। आनू तो कहता है कि टिकुडी सी मावणी इस गाँव तो क्या पासवाले गाव म भी कोई बेटी-बानणी नहा। कहा वह झूठ तो नही बालता।

तू यहाँ क्या आया ?" अचानक ही टिकुडी न यह अचीता सवाल

कर डाला उससे।

माहन के भायने का कौर उठाता हाथ थम गया। कडी मीट से उसने टिकुडी के सामन देखा और जैसे सोचकर बाला, "मतीरे खाने, खेत दखने और किसलिए।"

'तरे शहर मे मतीरे नही मिलते? लारिया तो भर-भरकर ले जाते हैं शहर वाले।" टिकुडी का हौसला अब भरपूर था।

'मिलते हैं, पर मुझे खेत भी देखना था मोहन ने कहा कि खेत मे भूख बहुत खुलकर लगती है खेत की हवा से आदमी निरोग हो जाता है"

"तू और कित्ते दिन रहेगा?" टिकुडी को उसका हर बोल बेमतलब और बमानी लगन लगा उसने उसके खेत-महातम को बीच मे ही राक कर पूछ लिया।

'क्यो? मरी मर्जी, तुझे इससे क्या?' उसने अजीब मिठास मे हँस कर कहा, जो टिकुडी का कुछ भला सा लगा।

"सच्ची बात तू क्या फकत खेत देखने ही आया है?"

'तो और यहाँ है ही क्या?" कहकर हाथ धो लिए माहन के भायन न।

टिकुडी पर जमे घडा भर ठडा पानी आ पडा। मोहन ने शहर मे कमे-कमे सूमडे (दभी) भायले बना रखे है! दो बाल मीठे बोलने क्या हात हैं, जैसे कुछ जानता ही नही। खेत मे क्या फकत खेत ही होता है—मिनख नही हाते। मिनख न हो, तो खेत ही क्यो हो बागरे तो हल जोतन से रहे। अब जीमना मुझमे बापू ही परोसेगा अपने लाडले बट ब गाडल भायले को। टिकुडी ने पक्की विचार ली।

बापू न गाडी जोत ली तो उसन भी अपना थैला, जिसम वह अपनी रछानी और पूर पल्ल लाया था, गले मे लटका लिया। टिकुडी न उम दस कर ही पता लगा लिया था कि आज यह मोहन का भायला अपन शहर लौटने वाला है। जाए, उसकी बला से! कच्चे मतीरे तो मान नही होंगे और।

सवरे ही काका की गाडी में घर से माँ आ गयी थी। साथ ही रधना

नी। बापू ने गाडी लाद ली, तो मोहन के भायले का लाड से पूछा, "मतीरों की ओर मन मे तो नही रह गयी ?"

"एकदम ही नहीं   पट भर गया।" कहकर उसने अपने पट पर हाथ फेरा। उसके इस भोले या बावरेपन पर पहले बापू और फिर रुघला दोनो हँसे। टिकुडी को फकत झुंझलाहट हुई   इफाल वहीं का। मतीर कोई पेट भरन की चीज है। कोरा पानी ही तो होना है   शरीर म गया और पेशाब मे बहा   पट म रहा ही क्या।

बापू ने बल की रास पकडी और उसने अपने गले को अपनी आदतमुजब हिलाया। टणक-टणक की आवाज म टणकोरा बज उठा। रास खिचते ही वह सिर धुनता रास्ते की तरफ बढने लगा। मोहन का भायला अपना थला लटकाए गाडी के पीछे पीछे चला। आग ही आग बापू, पीछे सिर धुनता बैल और गाडी और गाडी के पीछे थला लटकाए कसे काठे कपडों म मोहन का भायला   टिकुडी अपलक देख रही थी उन्हें जाते। अचीते ही एक क्षणमात्र ललक उभरकर आयी टिकुडी के मन म—क्या मोहन का भायला एक बार मुडकर नही देखेगा उसकी ओर ? हो चाहे सूमटा ही, पर है कसा गौर निछोर ममोलिए सा फूटरा।

उसकी दूर सरकती पीठ पर थिर हो गयी टिकुडी की मीट   सुन मे ही उसने अपना एक हाथ पास खडे रुघले के कधे पर रख दिया। खेत की सीव से गाडी निकलने तक उम्मीद नही छूटी उससे   वह एक बार मुडकर अवस देखेगा। आखिर निष्फल गयी टिकुडी की उम्मीद। साव से मुडते ही सब कुछ अलोप हो गया—बापू, बैलगाडी और मोहन का भायला।

टिकुडी की जैसे सपने म आंख खुल गयी। वह छपाक से मुडी और रुघले के आगे गोडे टककर बैठी और बडी मनवार से बोली "रुघला तू मरा म्याणा बीरा है न   मेरा एक काम कर द, दौडकर बापू की गाडी के पीछे जा और उस मोहन के भायले से पूछकर आ कि उसका नाम क्या है ?

उसका ? रुघले न गाडी की दिशा म हाथ कर भोलापन स पूछा।

अरे, हा ! उसी मोहन के भायले का !"

और तभी माँ झोपडे से निकलकर बाहर आयी। सुन म टिकुडी भूल ही गयी कि वह झोपडे के ऐन आगे ही तो खडी है और अभी-अभी माँ अन्दर गयी है।

"टिकुडो, किसका नाम पूछने भेज रही है, री ?" मा ने फकत इत्ता ही पूछा उससे।

"माँ माँ, वो हैं न तीनो " टिकुडो ने खडी हाकर पूरा हाथ आसू के झोपडे की तरफ पसार दिया और उसकी आखो मे परनाला छूट गया जैसे, "वो तीनो मुझे अकेली को देखकर तग करते है तुम मुझे खेत मे अकेला छोडकर घर मत जाया करो ।'

रघला इस बीच बापू की गाडी के पीछे दोड रहा था।

वाडे का कुत्ता

[एक प्रतीक-कथा]

छुटपन से ही एक कुत्ता मेरे साथ है—उपस्थित और अनुपस्थित—दोनो रूपो म। अपनी उपस्थिति मे यह सानलिया रोयो और सुनहरी काया वाला कुत्ता आँखें भरकर मुझे देखता रहता है। इन भोली और निश्छल आँखो म मुझे अपार कृतज्ञता भावना के दर्शन होते हैं। क्या एक कुत्ता सचमुच मुझे कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा है?

बात बहुत पुरानी है। तब मेरा सब कुछ पिताजी पर निर्भर था। उनका तबादला अपने देश के औसत धूसर और रेगिस्तानी कस्बे म हो गया था। वहाँ कुछ दिन वे अकेले रहे। फिर हम, माँ और मुझे साथ ले गये। कस्बा लखपती-धनाढ्य सेठो से भरा था—दब्बू, शात और निरुत्साही किस्म के कमाऊ लोग, जिन्होने दुनिया से आँखें मूँदकर अपनी हवेलियो मे लगे दौलत के ढेर पर समाधियाँ लगाने म ही अपना निर्वाण खोज रखा था।

पिताजी कस्बे की एकमात्र बैंक के मैनेजर थे। इन नये और अनपढ अमीरो म उनका खासा रोब था। हम वहाँ अपना भाडे का घर देखकर भौचक रह गये। किसी सेठ ने अपनी नयी-नकोर हवेली ही पिताजी को सौंप दी थी। इस हवेली के ठीक सामने एक सूना बाडा था—दसफुटी जोधपुरी पट्टियो से घिरा विस्तृत बाडा। यह किसी भावी हवेली की भाव भूमि और आधार भूमि, दोनो था। बाडे मे अत्यन्त सघनता से उगे हुए कीकर के अनगिनत पेड थे। कीकरो तले साँपो के निर्विघ्न विचरण की बात

सुविदित थी। हमे रात-बेरात पट्टियो के पास से गुजरते सँभलकर चलने की हिदायत थी। लगभग एक-एक फुट चौडी खडी पट्टियो के बीच की फाँको मे, साँप सैर करने आम रास्ते पर निकलते रहते थे। पिताजी ने हरेक को अपनी अलहदा टॉर्च ला दी थी। कोई आकर बताता कि साँप निकला, तो मैं अपनी टॉर्च लेकर उसे देखने भागता। मुझ शहराती बच्चे के लिए साँप को अपनी मौज मे स्वच्छंद विचरण करते देखना बडा रोमांचक अनुभव होता। काले, भूरे, चितकबरे, छोटे, बडे विषैले और विषहीन सभी भाँति के साँप वहाँ मिलते थे।

मेरे मासूम कुत्ते की दास्ताँ, इसी बाडे से शुरू हुई थी।

याद नही कि हम बाडे के सामने रहते कितने दिन बीते कि एक सवेरे पाँच सात मजदूर कुल्हाडियाँ लेकर आए और बाडे मे खडे कीकरो का सफाया करने मे जुट गये। बाद मे माँ ने बताया कि ये कीकर पिछली गली की एक गरीब बुढिया ने बाडा मालिक की अनुमति लेकर अपने लिए कटवाये हैं। वह इन्हे सुखाकर सालभर का ईंधन जुटाएगी। सेठो का बाडा मुफ्त मे साफ हो गया, बुढिया को ईंधन मिल गया। ऐसी पारस्परिक सद्भावना की कस्बे के लोगो मे भारी प्रचुरता थी जिसके ल तुआ पर आज चाहूँ, तो घटो सोच सकता हूँ। शाम होते होते मजदूर कीकरो का काम खत्म कर, उनकी ढेरी पट्टियो के बाहर लगाकर चले गये। बाडा खुले मैदान की शक्ल मे सामने था—सिवाय उसके बीच मे एकाध ईंट पत्थर के ढेर, चिकनी मिट्टी के जमे हुए छोटे बडे ढूहो और कुछ आक के पौधो के। बाडे के दक्षिण मे एक अधनंगा सा बावलिये का पेड भी था, जो अब समूचे बाडे मे छाया और शीतलता का एकमात्र जरिया था।

2

उस बाडे मे कोई द्वार न था। मजदूर पट्टियाँ उखाडकर घुसे थे, जिन्हे उन्होने फिर से गाडकर बाडा बन्द कर दिया था। ऐसा लगता है कि बाडे मे घिरी पृथ्वी का टुकडा, अपने मालिको जैसे ही वसुध और आत्मलीन समाधि लगाये हुए था। इसे छेडने, सँभालने, देखने या खोलने कोई नही आता था। इसके स्वामित्व का पट्टा मालिको की तिजोरी म

बँद पडा होगा और उनमें दिनों दिमाग में भावी हवेली के नक्शे कुलबुलाते रहे होंगे। न जाने वक्त में इस बाड़े के भाग्य में यही वदा था?

मौसम बदल चुका था। शायद नवम्बर का महीना था। यही दिन होते हैं जब कुत्तों का कामावेग अपने चरम पर दिखाई पड़ता है। गलियों में विपरीत मुखी स्तम्भित मुद्रा में मैथुनरत कुत्ते-कुत्ती बच्चों में कौतूहल जगाते जहाँ तहाँ मिल जाते थे। इसी का दूसरा पहलू था कि गली गली में कुतियाँ के जापे हो रहे थे। हर गली में एकाध कुतिया पूरी में केऊँ-केऊँ करते अपने नवजातों के साथ नजर आती। कुछ बड़े होते ही ये पिल्ले बच्चों की गोदियों में दिखाई पड़ते। जाड़े की गुनगुनी धूप में पिल्लों पर प्यार उँडेलते, उन्हें दुलारते फटकारते या उनकी हिफाजत की फिक्र में घुलते बच्चों के दृश्य बहुत आम थे। हिफाजत की फिक्र इसलिए कि दूसरी गली का कोई कुत्ता, किसी निर्दोष पिल्ले की गर्दन पकड़ने का हरदम ताक में होता था और अक्सर इस तरह पुरानी रंजिश निकालने में कुत्तों की सफलता से बच्चे वाकिफ थे। पिल्लों की जन्मदर ऊँची होती, पर यों बढ़ी हुई मृत्युदर से संतुलन बना रहता।

एक दिन मैं बाड़े के करीब से निकल रहा था कि पट्टियों के भीतर से एक बारीक आवाज़ कानों में पड़ी। मैं रुक गया और दो पट्टियों के बीच फाँक पर आँख लगाकर बाड़े के भीतर देखने लगा। बहुत चेष्टापूर्वक देखने पर वह दिखाई पड़ा—ईंटों के पास कुनमुनाता हुआ नन्हा सा पिल्ला। शायद हिफाजत के लिए किसी चाहने वाले बच्चे ने उसे बाड़े में छोड़ दिया था। पट्टियों के बीच की फाँकें इतनी बड़ी न थी कि वह इनमें से बाहर आ जाता। उस वक्त मैं अपनी राह चला गया, पर बाद में पट्टियों के पास जाकर बाड़े में ताक झाँक करने से अपने को कैसे रोक लेता! बचपन ऐसा ही होता है छोटी छोटी बातों में मशगूल और उत्तेजनाओं से लबरेज। शायद हरेक आदमी के भीतर एकाध वक्त का बहाना या बहाने का कुत्ता मौजूद होता है जिसके सहारे वह जब चाहे अपने बचपन में लौट सके। मेरे पास तो सचमुच का जीता-जागता कुत्ता है।

मुझे याद है कि मैंने अपने दोस्तों के साथ मिलकर पिल्ले को निकालने

की कितनी ही युक्तियां ढूंढी। उसे भीतर छोड़ना जितना आसान था, निकालना उतना ही मुश्किल लग रहा था। मेरी मित्र मण्डली में बारह बरस से बड़ी उम्र का कोई न था। कोई साहस नहीं कर पा रहा था कि बिना द्वार के बाड़े में कूदकर पिल्ले को निकाल लाए। पट्टियाँ दस दस फुट खड़ी थी, हमारे कद पांच फुट के भीतर-भीतर थे। एक रास्ता पट्टी उखाड़ने का था, जिसमें दो बाधाएँ थी। एक तो पट्टियां बहुत मजबूती से गड़ी थी, दूसरे सेठों की डांट फटकार का खतरा था। यह शुद्ध रूप से हम बच्चों की उलझन थी, किसी बड़े का जरा भी फुरसत न थी। ले दकर मैंने मां से कहा, तो उन्होंने सूखी सी सहानुभूति जताकर हाथ झड़का लिए।

आखिर हमने स्वीकार लिया कि पिल्ला जल्दी बाहर नहीं आ सकेगा। अब सवाल उसके खाने पीने का रह गया। एक पट्टी ऊपर से खण्डित थी जिसमें छोर पर फांक ज्यादा थी। इसमें से एक एल्यूमीनियम का पुराना तसला कहीं से लाकर हमने भीतर छोड़ दिया। पिल्ला उसे उलटा देता, तो हम लम्बी छड़ी से सीधा कर देते। रोटी पट्टियों के ऊपर से फेंकते और पानी इस तसले में उँडेल देते। यह हम सबका रोजमर्रा का शगल हो गया। बाड़े में बासी रोटियाँ यहां वहां पड़ी रहतीं, क्योंकि हममें से हरेक इस शाही पिल्ले के पालन पोषण को लेकर उत्साहितरेक में था। इसी अतिरेक में बड़े बहस मुबाहिसे के बाद उसका नामकरण हुआ—जैकी! बाड़े में पलते जैकी से बच्चों के सिवाय किसी का लेना देना न था। यहाँ तक कि किसी कुतिया ने भी बाड़े के पास आकर, अपने हावभाव से जैकी की मां होने का दावा प्रस्तुत नहीं किया था।

3

दिन पर दिन बीतने लगे। सचमुच जैकी पिल्ले को बाड़े में कोई खतरा न था। सर्दी में सांप तक बिलों में जा दुबके थे। जैकी को लेकर जनमा मेरी मण्डली का उत्साह भी मंदा पड़ने लगा। कुछ ने उसे रोटी डालना भी छोड़ दिया था। बचपन के कौतुकों में दीर्घजीविता का सर्वथा अभाव रहता है, परन्तु मैं इस मान्यता के विपरीत चल रहा था। मुझे पक्की

आशा थी कि जैकी कोई रास्ता ढूढकर, बाडे के घेरे मे बाहर पदार्पण जरूर करेगा। इसी आशा को फलीभूत देखने की ललक लेकर मैं रोजाना सवेरे उसे रोटी पानी देने जाता। मेरी कामना रहती कि आज वह बाडे में न मिले। वह था कि मेरी पदचाप के साथ साथ लपककर पट्टियो के पास चला आता। मैं फाक मे से देखता, तो वह मुझे केऊँ केऊँ करता, दुम हिलाता दिखाई पडता। याद करते हुए अचम्भा होता है कि अपने नाम के प्रति सजग होते इस जैकी नामक पिल्ले को लेकर मेरी भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ कितनी वविध्यपूर्ण थी? कभी मुझे जैकी की शक्ल बिना मा बाप के उस दुखी बच्चे सी लगती जिसका वर्णन मैंने कहानियो म सुना था। कई बार मुझे वह रोया हुआ या रोता नजर आता। पता नही यह सब था या मेरा अनुसधान मात्र कि जैकी की आखो की जडो म मुझे अक्सर एकाध बूद आसू मचलता दिखाई देता। मुझे जैकी को लेकर करुणा के दौरे स पडत पर तु जब वह नट्टूरे करता, कूदता फादता और खुशी जाहिर करता तो उसका बाडे म घिरा होना मुझे बुरी तरह साल जाता। मुझ उसम बाडे स निकलन की अनिच्छा या असामथ्य देखकर झुझलाहट होती और अमूमन सा गुस्सा आन लगता।

होत होत यह हुआ कि एक पल भी म उसे भुलाकर नही बैठ पाता था। एक दो बार उसे बाहर निकालने क एकल अभियान भी मैंने चलाय। पटिटयाँ हिलान की चेष्टाए की और सोचा कि जड से खोदकर कोई पट्टी छितरकर उखाड डालू। ऐसा नही कर पाया, तो सोचा कि किसी बडे स कोई सलाह-मशविरा कर लू—कुछ करू जिससे जैकी बाडे से छुट कारा पा सके। पटिटयो क बाहर मैं था, भीतर जैकी—बाडे के घिरे हुए विस्तार म खाता पीता हँगता, मूतता, रोता, हसता और दिन दिन बडा होता हुआ। उसकी दूसरी मौजूदगी मेरे भीतर थी जो मुझे पल पल, घर म बाहर निकलने को फडफडाती मालूम देती। यह फडफडाहट उसी की थी या मेरी, कुछ पता नही लगता था।

इसी ऊहापोह म मेरा वहाँ स जाने की घडी अचानक आ धमकी। पिताजी मेरी पढाई के बहाने आये तब से इस जगह को कोस रहे थे। जल्दी आन आन उन्होन मेरा एडमीशन जयपुर के एक बडे स्कूल म

कराकर होस्टल मे रहने का प्रबन्ध कर दिया। जैकी को बाडे से निकालने का अभियान मँझधार छोडकर मैं वहा से चला गया।

इतनी दूर पहुँचकर भी मैंने जैकी को एकदम नही भुलाया था। यह तो तब हुआ, जब मेरे प्रबल आशावाद ने उसे अनुपस्थिति मे ही बाडे से बाहर निकालकर दम लिया। मैंने मान लिया कि वह अब तक रास्ता ढूंढकर जरूर बाहर चला आया होगा। ऐसा मानते ही वह एक साधारण गली के कुत्ते मे बदल गया—जिसे भुलाना मुश्किल नही होता। फिर मेरे नये माहौल मे कितनी ही नयी चीजें थी, जिन्होने उसकी याद को भ्रम धकेल बाहर करने मे मुझे चाही अनचाही मदद पहुचाई। मैंने अपनी पहली पहली चिट्ठियो मे उसका जिक्र जरूर किया, जिसके बदले मे घर से कोई समाचार नहीं मिला। आखिर जैकी बेचारा एक पिल्ला ही तो था, जिसे पिताजी जैसे सयाने लोग क्यो तूल देते ?

४

मैं छोडकर होस्टल आया, तब तक जैकी को बाडे मे रहते लगभग दो महीने बीत चुके थे। दो तीन महीने होस्टल मे उसकी याद बनी रही, फिर वह मुझसे एकदम ओझल हो गया। यहा तक कि सत्र समाप्ति के बाद, छुट्टियो मे घर लौटते हुए भी उसकी याद नही कौंधी। मैं स्कूल और होस्टल के ढेरो सस्मरण सँजोए घर पहुँचा—वही, उसी हवेलियो वाले कस्बे मे जहाँ पिताजी हम ले आये थे।

मेरे पीछे पिताजी ने वह हवेली छोडकर एक मँझोला सा, घर दूसरे मुहल्ले मे ले लिया था। इस घर के सामने न बाडा था, न जैकी ही कहीं नजर आ सकता था। यहाँ पहुँचने पर उसकी याद ने भीतर हल्की सी करवट जरूर बदली थी, पर मैं ध्यान नही दे पाया था। शायद मुझे आए भाई दस-पन्द्रह दिन बीत थे कि एक दिन उधर से नन्दशरणजी आए। वे हमारे हवेली वाले घर के बायें बाजू पडोसी थे।

सवेरे का वक्त था। नन्दशरणजी पिताजी से बातें कर रहे थे। मैं पास से गुजरा, तो उन्होंने मुझे पुकार लिया। ऊँचे कद, फैले डील डौल और साँवले रग के, खिल खिल हँसने वाले नन्दशरणजी का सबसे अप्रिय

परिचय था उनका निहायत कस्बाई अध्यापक होना। पिताजी पीठ-पीछे उनके हुलिये और मूर्खता पर हँसा करते थे। इसलिए मुझे नन्दशरणजी के घर आगमन पर अचम्भा हुआ था कि मेरे पिताजी जैसे ऊँची नाक वाले सचेष्ट नगर आदमी से वे किस मसले पर मिलने आये हैं ? उन जैसे सरल और गावदी आदमी का लेन के लिए मेरे पिताजी के पास कुछ नहीं था।

नई वाह ! हमसे नहीं बोलोगे वहाँ से क्या इतनी ऊँची पढ़ाई कर आए ? नन्दशरण जी के बोलने से जाना कि मेरे हास्टल जाने की उनको पूरी खबर है। कुछ ऐसे ही बेतुके वाक्य और बोलकर उन्होंने मुझे अपने घर आने का न्योता दिया। मैंने हाँ भरी, तो अचानक चहक पड़े, "और हाँ, उसमें नहीं मिलोगे अपने बाड़े वाले दोस्त जैकी से ?"

एक पल में समूचा बाड़ा उलट फेर मचाता मेरी यादों के ऊपर तैर गया। बाड़े में मौजूद नन्हा जैकी जैसे कहीं से उछल कर बाहर निकल आया। मैं इतनी देर चुप रहा था, अब और रहना नहीं हुआ। तपाक से पूछा, 'जैकी अभी तक बाड़े में है ? बाहर नहीं निकलता ?"

"क्या निकलेगा ?" नन्दशरणजी बताने लगे, "मैं रोज उसे रोटी खिलाता हूँ, पानी पिला देता हूँ—उसे और क्या चाहिए ?'

सरलता एकदम निष्प्राण सरलता से मानें तो नन्दशरणजी का कहना असंगत नहीं लगेगा। आखिर एक कुत्ते को और क्या चाहिए ? बैठे बिठाए खाना पीना और पेट खाली करने के लिए खुला मैदान, जहाँ वह सूंघ सूंघ कर इसके निमित्त अपनी मन पसंद ठौर पा सके। इसकी जैकी के पास क्या कमी थी ?

५

मैं बाड़े पहुँचा, तो अँधेरा घिर चुका था। अच्छी तरह याद है कि वह एक पूरे चाँद की रात थी। चाँद मेरे नाम से ही आसमान के एक ओर इठलाता हुआ कस्बे के राम राम पर शहद बरसा रहा था। बाड़े की लाल पटिटयाँ दूर से दीखते ही मन में हिलोरें उठने लगी थीं—जैसे कि किसी बेहद प्रिय से भेंट होने वाली हो ! कहाँ छिपा होगा ? पुकारने पर चला तो आयेगा ? अपना नाम भूल तो नहीं गया ? इसी तरह की उधेड़-बुन

करता मैं बाड़े के कोने पर जा खड़ा हुआ। वही दुबसार पट्टियों का घेरा और ऊपर भाँतित दुबारा उग आए कीकरों के सिर! थोड़ा देर खड़े रहने के बाद मन में अपने पर ही खीझ सी उठी—आने के लिए गलत वक्त क्या चुना? खूब जोश में था चांद, फिर भी उसके उजास के भरोसे कीकरों के झुरमुट तले जैकी को ढूंढना दुष्कर था। लाख इच्छा रहते भी दिन में क्या नहीं आया? दरअसल भर दोपहर एक कुत्ते से मिलने जाने की बात पर मैं जैसे अपने आगे ही शर्मिन्दा-सा हो रहा था। इस घपेलकर चल आने में ही अँधेरा हो गया था। यह सम्भवतः अपने वयस्क होते जाने का आकार लेता अहसास था, जो मुझसे मेरे बचपन का बच्चिपन धीमे धीमे हथियाता जा रहा था। यही दिन थे, जब मैं अपने क्रियाकलापों को दूसरों की आँख से भी देखना सीख रहा था।

गली के एक पहलू पर चाँद के तिरछेपन से छिटकती अँधेरे की झालर सरीखी पट्टियों की छाया पड़ रही थी। मैं इस छाया में धीमे धीमे चला तो लगा कि रेंग रहा हूँ। सताये हुए साँप जैसी अवस्था में, कि कोई सुराग मिले और मैं उसमें घुस पड़ूँ। आवाज देकर पुकारूँ—जैकी! जैकी! लेकिन जीभ में ऐंठन होने लगी कि कोई दूसरा निकल बाहर न आ जाए! किसी फालतू पूछताछ का जवाब देने की सोच कर ही सिहरन हुई। फाँक से बाड़े में देखने की व्यथता तो पहले ही समझ चुका था, फिर भी यही करने की पल पल इच्छा हो रही थी। पट्टियों की लम्बी कतार को छूकर पार करता मैं बाड़े के छोर पर पहुँचा कि उसने पुकारा—भौं भौं! बेसब्री से मैंने फाँक पर आँख धरी। कुछ सूझा नहीं, पर यह साफ हो गया कि आवाज भीतर से आई है। मैं लपककर ऊपर से खण्डित, ज्यादा चौड़ी फाँक वाली पट्टी पर पहुँचा और उचक-उचक कर आवाज की दिशा में उसे ढूँढने लगा। अचानक मेरी धड़कन गले में आ गई, कपोटों पर धड़क धड़क अनुभव करते हुए मैंने देखा उसे—कीकरों के बीच अपेक्षाकृत ऊँचे मिट्टी के ढूह पर बैठा हुआ हमारा जैकी ही भौंक रहा था। चाँद सरक-कर कुछ ऊपर आ गया था। चाँदनी ने जैकी और ढूह दोनों को रोशन कर दिया था। मटमैले ढूह पर उसकी मानलिया काया किसी जेवर की तरह जगमगा रही थी। जैकी, हमारा नन्हा सा पिल्ला जवान होकर मेरे

सामने था—पिल्ले की बजाय कुत्ता कहलाने का अधिकारी ! मैंने धीमे से पुचकारा भी। जैकी ने कोई ध्यान नहीं दिया। अचानक वह पंजा के बल संतुलन रखता सा ढूह से नीचे उतर कर अँधेरे में ओझल हो गया। कुछ देर मैं उसके दुबारा भावन पर कान दिए खड़ा रहा, फिर घर चला आया। मैं जैकी को दिन के भरे पूरे उजास में देखने की उमग लिए सो गया।

सवेरा होते ही मैं बाड़े पहुँच गया। अब की जैकी का ढूँढना नहीं पड़ा। चौड़ी फाकवाली पट्टियों के पास जाकर देखते ही वह सामने था, एक कीकर तले इत्मीनान से बैठा हुआ—ऐसे कि दुनिया में सुख की ऐसी सास इस अकेले को छोड़ किसी के भाग्य में नहीं ! मैंने धीमे-से आवाज दी—जैकी ! वह पट्टियों से दूर न था, नाम सुनते ही कान उठाए और मेरी तरफ दौड़ा आया। मैंने उसे जी भर कर देखा—उसका गाढ़ा रंग फैलकर हलका हो चुका था भूरे से सोनलिया ! मुँह तीखा-नीखा था जिसका अगला हिस्सा गहरा काला होने के कारण उसकी समूची सोनलिया काया को दीप्ति सी मिली हुई थी। कान कागज के बड़े फूल से पतले सुभावने और आखें इतनी काली कि कजरारी कही जा सकें। कुल मिलाकर जैकी एक खूबसूरत कुत्ता था। मैं देर तक जैकी को देखता रहा और तरह तरह से उसके बारे में सोचता रहा। फिर भी मैं उसकी खुशहाली से सहमत नहीं हुआ और अपने में उसे बाड़े से बाहर देखने की पुरानी ललक पहचान गया। उसके हाव भाव से प्रकट हो रही संतुष्टि और प्रसन्नता एकाएक मुझे अपने बर्दाश्त से बाहर लगने लगी। मैंने मन-ही मन उसे चुनौती देते हुए कहा कि जरा ठहर, मैं तुझे बाहर करके ही दम लूँगा।

६

इस तरह मैंने पाया कि जैकी फिर मेरे अंतस में फड़फड़ा रहा है—उसे वहाँ से उड़ाकर खुले आकाश का स्वाद चखाए बिना मेरा छुटकारा न होगा। इस बार पहले से एक अंतर यह था कि मेरे हौसले बुलंद थे। लगता था कि कुछ भी मुश्किल नहीं, सब आसानी से हो सकता है। इस

बुलदी म मुझे अपनी पिछली सब चेष्टाएँ अधूरी और ओछी लगने लगी सब-कुछ नये सिरे से करने के लिए एक अजब उत्तेजना मुझ पर नशे की तरह छाने लगी। इसके बावजूद थाडी दूर चलते ही, मैंने अपन को अकेला पाया। मुझे सोचना पडा कि कौन हो सकता है जिससे इस पेचीदे काम मे कोई सहयोग ले सकू। या, क्या बिना किसी के कहे-सुने अकले सब कुछ अजाम दे डालू? बात करने को भी किसी दूसरे की खोज शुरू की, तो अचानक पाया कि समूची दुनिया निजन हो गई है। जिसके पास फुसत होती कि ऐसे सिरफिरे अभियान का जरा भी भागीदार बने!

एक आदमी था जिस पर मरी उम्मीद की डार डेरे डालने लगी—शब्दशरण जी? उन्होंने अपनी पहल से मेरे आगे जर्की की बात छेडी थी और यह भी बताया था कि वही उसे रोटी पानी दकर पालते रहे थ। एक धुधली सी उम्मीद बनी कि जरूर उन्हे जर्की मे थोडा-बहुत मोह होगा। परतु शब्दशरण जी को मेरे मन ने कभी किसी काम का आदमी स्वीकार ही नही किया था। सामने पडने पर उनको रस्मी तौर पर या देखा-देखी अभिवादन जरूर करता था, लेकिन उनके दशन होने पर पता नही क्या मुह का जायका बिगड जाता था। एक नाजुक नाम के धारक होकर भी शब्दशरण जी अपने उजडडपन के लिए नामी थे। उनकी कद-काठी, चाल-ढाल और व्यवहार को तोलकर लोग उन्हे पीछे स 'ऊँट' कहना पसन्द करते थे। अपने प्रिय चेला मे भीवे 'ऊँट मास्साब' कहाते हैं—यह भी मुझसे छिपा नही था। फिर भी, विवशता थी कि जर्की प्रकरण पर बात करने के लिए उनसे बढकर दूसरा कोई न था।

मैं झिझकता हुआ उन्ही के पास जा पहुँचा। उनका लडका मेरी पुरानी मण्डली का सदस्य था, परन्तु मेरे होस्टल से आने के बाद मुझ से कटा-कटा रहने लगा था। वर्ना मैं उसके पिता से पहले उसी पर अपना दारामदार टिकाकर देखता। मैं जब पहुँचा, वह घर पर भी नही था। मेरे सामने बाधा यह थी कि कहाँ से शुरू करूँ? वह झेंप और लाचारी मुझे अभी तक ज्यों की त्यों याद है जबकि शब्दशरणजी की समूची गहस्थी मेरे सत्कार मे बिछती सी नजर आ रही थी। कस्बाई जीवन के हिसाब से मेरे पिताजी का कद काफी ऊँचा था, जिसने मुझे भी एक

अकारण दर्जा दिलवा रखा था। शब्दशरणजी की अनपढ़ और देहातिन पत्नी बहुत ममतापूर्वक मुझसे बोली-बतियायी। उनकी सात आठ बरस की लड़की आखा में ढेर सा अचरज संजोय मुझे देखती रही, फिर दरवाजे के पल्ले से सटकर लजवती बन गई। वह छोटी सी लड़की अपनी अवस्था के परबार, फालतू की लाज ढाते कितनी भौंडी लगी होगी, यह आज भी सोचने की बात है। हमारे गावोंओरकस्बोंमलडकियां क्यालाजपहन पहने जन्मती है? बचपन म बचपन म विलग होते बच्चे कितने अप्रीतिकर हो जाते हैं यह जानना हो तो मेरे एक दोस्त का सुनाया हुआ किस्सा सुनिए। अपनी बैंक की नौकरी मे वह जहां रहता है, वही उसने पांच बरस की एक लड़की से ठिठोली कर ली। लड़की कही भागी जा रही थी, उसने लपक कर उसकी बांह थामी और सामने जीभ निकाल दी। लड़की ने हाथ झटकते, आंखें तरेरते कहा कि ऐसी हरकत अपनी घरवाली के साथ करना। यह है कोपल म छिपी हुई डंठल की ऐंठन!

मैं सबके साथ शब्दशरणजी को गुरु जी ही बुलाता था, परंतु मेरी स्थिति उनके किसी चालू चेले से भिन्न थी। जैकी के अलावा कोई और मामला होता तो शायद मैं तनिक कभी न झेंपता। चूंकि जैकी म मुझे अपनी स्वयं की दिलचस्पी ही ऐसे भार सरीखी लगती थी जिसने मेरी आत्मा पर सवारी गांठ रखी थी और मैं चाहकर भी इसे परे नहीं कर सकता था। हालांकि इसकी अपरिहार्य और कष्टदायी कार्यवाही शुरू करने म ही शब्दशरणजी की शरण म पहुंचा था। ऐसा लगता था जैसे जैकी नहीं मैं ही किसी बाड़े म बुरी तरह घिर गया हूं।

अपनी झिझक को धकेलकर मैंने शब्दशरणजी स पूछा, "गुरुजी अपन जैकी के लिए क्या करना चाहिए?"

"क्या करना चाहिए?" शब्दशरण जी मेरे पूछने पर चौंके और प्रतिप्रश्न किया, यह बताओ, क्या हो सकता है?"

उसे बाड़े से बाहर तो निकालना है न!"

किसलिए? वह तो अपने बाड़े का बादशाह है, तुम्हें क्या तकलीफ है?" शब्दशरणजी इस बार आदत मुताबिक खिलखिला पड़े।

मुझे उनकी हंसी किसी ताने की तरह काट गई। घायल होकर मैं

भीतर भीतर छटपटाने लगा। हँसी थमते ही मैंने तैश मे कहा, "मैं उसे बाहर निकालकर रहूँगा।"

शब्दशरणजी ने मुझे पल भर पराई सी नजर से देखा और बोले, "किस निकालोगे? वह बाहर आना ही नही चाहता।"

"क्यो?" मैंने अबोधपन से पूछा।

"एक बार निकाला था, फिर मुझे ही इसे वापस अंदर डालनापड़ा।" शब्दशरणजी ने आश्चर्यजनक गंभीरता से कहा।

"जैकी बाड़े से निकला था?" मैंने व्यग्रता से जानना चाहा।

"हां, बाड़े वालो ने निकलवाया था। उनके नौकर लट्ठ लेकर पिल पड़े इस पर इसने उनको बाड़े के खूब चक्कर कटवाये, पर इतनी जगह म कितनी देर भागता? एक पट्टी उखाड़कर वे अन्दर गए थे, उनकी मार से बचता बचता उसी रास्ते गली म भाग आया। उन्होने पट्टी लगाकर बाड़ा बन्द कर दिया और जैकी बाहर रह गया। शब्दशरण न किसी चश्मदीद गवाह के बयान की तरह बता डाला।

"तो फिर आपने इसे वापस बाड़े म क्यो डाल दिया?" मैं आवेश मे आता बोला।

"क्या करता?" शब्दशरणजी एकदम सयाने नजर आने लगे। बोले "बाहर इसे रास नही आता था। मुश्किल से दस दिन बाहर बिताये इसने। हरदम दूसरे कुत्तो से डरा सहमा दुम दबाये छिपता फिरता। कुत्ते इसको सूंघ सूंघ कर चले जाते, यह अपने शरीर को सिकोड़े पड़ा रहता। छिपने की तलाश मे लोगो के घरो मे घुस पड़ता। हमारी तो छत तक चला जाता था। भूखा प्यासा और लुटा पिटा सा रहता। दस दिनो म यह सूखने लग गया। मुझे इसकी हालत पर तरस आ गया और मैंने इसे उठा कर बाड़े म छोड़ दिया। दुबारा वहाँ पहुँचते ही इसने बाड़े का एक चक्कर लगाया और जाकर अपने सिंहासन पर विराजमान हो गया।

जैकी का बाड़े म एक ही सिंहासन था, जमी हुई चिकनी मिट्टी का ढूह।

यह सुनकर मैं वहाँ से चुपचाप चला आया था। जैकी के बाहर निकलकर बाड़े म दुबारा पहुँचने के किस्से न मुझे झकझोरकर छोड़

दिया था। सदमे की हालत में मेरे हाथ पैर चार-पांच दिन ठंडे रहे होंगे और मैं अपने भारी मन को समझाना चाहने लगा कि इस बखेड़े से पीछा छुड़ाना ही ठीक रहेगा। कुछ देर के लिए मैंने अपने अंदर की फड़फड़ाहट को दबा डाला, पर वह और भी तेज होकर उभरने लगी। मेरी इस बुरी हालत का एक भी हिस्सेदार न था, जिससे इसे थोड़ा बहुत भी बांट लूं। होस्टल जाते ही यहां सबसे दोस्ती छूट चुकी थी। घर में कोई समवयस्क न था। मां या पिताजी का कहने के नाम से ही फटकार सुनने लगती। एक ही चारा था—जैकी पर गुस्सा करना और इसकी अभिव्यक्ति में मैंने अपने-आपको उसे देखने जाने से रोके रखा। ऐसा करते हुए लगता था कि मैं अपने को चारों तरफ से जकड़े हुए हूं। यह जकड़न मेरा दम घोटने लगी।

मेरा होस्टल लौटने का दिन सरकता हुआ पास आ रहा था। यही एक बात थी, जिससे मुझे राहत मिलने लगी। सोचने लगा कि वहां पहुंचकर इस नालायक जैकी से पिण्ड छूट जायगा। यहां रहते कसमसाने का चारा न था। बार-बार इच्छा होती कि उसे देखूं—वह कहां बैठा है? क्या कर रहा है? कहीं बाहर तो नहीं निकल आया? क्या अब भी उससे उम्मीद रखी जानी चाहिए कि वह बाड़े की हद छोड़कर समूची पृथ्वी का होना पसंद करेगा?

एक दिन मैं हार गया। अपने से जूझने में पिछड़कर बाड़े के पास जा धमका। दोपहरी थी, संयोगवश गली एकदम सूनी थी। मैंने फौरन से बाड़े में देखा। जैकी कहीं दिखाई नहीं दिया। और भी बेसब्री में मैं उचक उचक कर उसे ढूंढने लगा था कि सहसा किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रख दिया। इस अप्रत्याशित और खुरदरे स्पर्श से चौंककर पीछे मुड़ा।

"क्या देख रहे हैं बाबू?" टखनों से काफी ऊंची लुंगी पर सूती बंडी पहन गठीले बदन का एक आदमी मुझसे सवाल कर रहा था।

'कुत्ता।' मैंने उसे पहचानने की कोशिश करते हुए बताया, 'मेरा सुना है इस बाड़े में उसे ही देख रहा हूं।'

'हम ढूंढ दें।' वह हंसा।

मैंने उसके हुलिये से ही उसका परिचय पा लिया था। बाजार म पलदारी करने वाला बिहारी मजदूर था, जो मुझे स्थानीय सेठ साहूकार का लाडला समझकर अदब मे बात कर रहा था।

"कैसे ढूढोगे ?" मैंने पलटकर पूछा।

"बाडे म जाकर, और कैसे ?"

"तुम बाडे मे जा सकते हो ?" मुझे उसकी सरलता पर विश्वास नही हो रहा था।

"क्यो नही हम तो तुम्हारे कुत्ते का पकड भी लायें।" उसने उसी तरह कहा।

"मैं तुम्हें पाच रुपये दूगा।"

"अच्छी कही बाबू ई कुतवा कौनो चीनी का बोरा है जिसका उठान के हम तुमने पैसा लेंगे ?" मेरी बात पर वह ठठाकर हँस पडा।

"तो जाओ, अन्दर।" उसे खडे देखकर कुछ देर बाद मैंने कहा।

७

पलदार न मेरे कहने को चुनौती समझा और फुर्ती से आगे बढा। उसकी चाल पुराने अनुभवी की सी थी और चेहरा ऐसे काम को चुटकी का खेल बताने वाला। बाडे के दक्षिणी छोर पर, लम्बाई से चौडाई की तरफ घेर के मुडने से जहाँ दो पट्टियो का कोना निकला हुआ था, पलदार पल म पहुँचा और पलक झपकते उछलकर उसने कोने की पट्टी का ऊपरी छोर लपक लिया। मैं हतप्रभ देखता रहा, पलदार लगूर के लहजे मे ऊपर चढकर बाडे म कूद पडा। भीतर से उसकी आवाज सुनाई पडी, "अब पकडता हूँ साले कुतवा का कान।"

मुझे अपने समूचे शरीर म एक झकार सी बजती जान पडी। बेसब्री से भरा कलेजा मुह को आ रहा था। मैं बेकाबू सा, इधर उधर, ऊपर नीचे आँखें टिकाता, गदन नचकाता बाडे के भीतर का चप्पा चप्पा देखते रहना चाहता था। कीकर पहले जितने घेर घुमेर और सघन न थे, परन्तु बाडे के उघडे अग छिपाने के लिए आचल के पल्ला से आडे आ रहे थे। मुझे पलदार या उसकी कोई झलक मिलती, फिर वे कही ओझल हो जाते।

भीतर भगदड हो रही थी, बाहर मैं जमीन पर पैर नही टिका पा रहा था। एसा चलते कितना वक्त बीता कि जैकी की गुम्मल आवाज सुनाई पडी—भो भौं भऊ भऊ ऊ?

"पकड लो, पकड लो इसे!" मुझे दौरा-सा पडा जैसे, मैं उत्तेजना से भरकर चीख पडा।

"ठहर ला तनिक, भागेगा कितनी दूर?" पल्लदार की धमकाती आवाज गरजी।

मेरा बचा-खुचा सब्र भी टूटने लगा। इतनी चेष्टाओ से भी मन मुताबिक दिखाई नही देता था—गुस्से और झुंझलाहट से भरकर मैं पट्टिया झकझोरने लगा। इस वक्त पट्टिया की बजाय किसी किले का मजबूत दरवाजा होता, तो भी मैं उस पर टूट पडता। मेरी रग रग खिचती जा रही थी। पहली, तीसरी, पाचवी या सातवी न जाने वह कौन सी पट्टी थी, जो मेरे झटके से जरा सी हिली थी। मुझमे मानो हजार हाथियो का बल समा गया, मैंने अपने को झोंककर पट्टी को झटके पर झटका देना शुरू किया। थोडी देर बाद ही अपनी जड की मिट्टी का जमा हुआ हिस्सा उछालती पट्टी गली की तरफ आ पडी—धडाम! अगली सास मैंने बाडे के अन्दर पहुँचकर ही भरी।

जकी गुर्रा रहा था। मैं काटा, ककरो और कीकरो क बीच से उधर लपका, जिधर गुर्राहट सुनाई दे रही थी। बाडे क उस पार पलदार जकी को कोने म कैद किए था। टाँगें और बाहे फलाय वह जकी का निकल भागन से रोके हुए था। जैकी डरा हुआ दीख रहा था और लाचारी से ही गुर्राता जा रहा था।

पलदार न मुझे देख लिया था, गदन को झटका देकर बोला, "ओ बाजू से कुतवे के पास जाओ इधर हम हैं।

मैं डरता डरता और धीरे धीरे आगे बढ्ने लगा।

सहसा पल्लदार का गठीला शरीर बिजली ज्या कडका और उसने जैकी का जा दबोचा। जैकी ने अंतिम बचाव के लिए पलदार के हाथो पर जबडा चलाने की अधूरी सी कोशिशें की। पलदार न हाथ बचात बचात ही उसका जबडा एक ही हाथ मे जकड डाला। मेरी तरफ मुह घुमाया,

बोला, "टाँगें पकड़ो न इसकी तुम्हारा कुत्ता है, तुमको नहीं काटेगा कभी।"

मैं और आगे बढ़ आया और पलदार की पकड़ में कसमसाते जैकी की कैंचीनुमा टाँगें पकड़ ली। कुछ देर मेरे हाथ टाँगों के साथ साथ चले, फिर मैंने जोर लगाकर हरकत बंद कर डाली। मेरा हौंसला धीरे-धीरे लय पर आने लगा था।

"उधर चलो, लेकर।" पलदार ने गली की तरफ इशारा किया। जैकी की गर्दन में बाहें लपेटकर उसे उठाते हुए वह आगे-आगे चल पड़ा। मैं जैकी की टाँगें थामे थामे पलदार के पीछे घिसटता हुआ सा जा रहा था। ऊबड़ खाबड़ पार कर हम गली पर आ गए थे। गली और हमारे बीच पट्टियाँ थीं, वही दस फुटी जोधपुरी पट्टियाँ! पलदार ने दो कदम पीछे धरकर अनुमान साधा और मुझसे बोला, "उछाल दो बाहर चिंता मत करो, मरेगा नहीं कुतवा।"

मैं अपनी राय पर पहुँचता, इससे पहले ही सब कुछ हो चुका था। पलदार ने अपनी मजबूत और फड़कती भुजाओं से जैकी को उछाल दिया था, मेरे हाथों में उसकी टाँगें झटके के साथ ही निकल गयीं और अगले क्षण ही बाड़े के बाहर से उसकी पों पों उभर आई।

उसकी पों पों सुनकर पलदार जोर से हँसा और फिर हाथ झड़काता बोला, 'इतनी सी बात अब ठीक है न?"

मुझे उखड़ी हुई पट्टी याद आ गई। मैं तेजी से उधर बढ़ा—कहीं उसी रास्ते जैकी वापस बाड़े में न घुस जाए! पलदार मेरे पीछे पीछे चल कर उखड़ी पट्टी के पास गली में खड़ा हो गया था। मैं जैकी को देख रहा था, वह आसपास कहीं न था। शायद पलदार मेरी यंत्रणा भाँप रहा था, अचानक बोला, "वो देखो उधर।"

मैंने मुड़कर देखा, पिछले चौराहे बाद की लम्बी गली में बदहवास होकर भागता हुआ जैकी आ रहा था। भागते भागते वह झटका लेकर रुकता और जमीन पर नाक लगाकर फिर भागने लगता। मुझे उसकी इस निराली चाल पर हँसी आई। मैं भी खुलकर हँस पड़ा फिर पलदार से कहा, "यह पट्टी खड़ी कर दें?"

हमने पट्टी फिर खड़ी की, जड़ में मिट्टी के साथ कंकड़ पत्थर भरकर उसे दृढ़ किया और हिलाकर देखा—वह बाड़े की हिफाजत में अपने वजूद पर अडिग हो चुकी थी। पलदार ने एक बार और हाथ झड़काए और मेरे सामने हंसकर चल पड़ा। मेरी आंखों में मारे खुशी के आंसू चू पड़े थे, जिन्हें देखने की उसे जरा भी फुर्सत न थी।

जैकी फिर इधर उधर हो गया था, मुझे पता ही न चल पाया। मुझे जैकी के बारे में नन्दशरणजी का बताया वृत्तांत याद आया और मैं आशंकित हो गया। बाड़े से पृथ्वी पर उतरने जाय गए जैकी को पृथ्वी का बनाए रखना भी एक काम हो गया था। मेरी छाती पर से जैसे एक शिला सरक चुकी थी, मैं अपने को बड़ा हलका महसूस कर रहा था, अब मुझे कठिन तपस्या से मिलने वाली सिद्धि जैसा अपना यह हलकापन बचाये रखने की फिक्र लगी। मेरा वजूद इसकी अमलदारी के लिए उतावला मचाने लगा। मैं हाथ पैरों से मिट्टी झाड़कर चौराहे पर आया। चारों तरफ निगाह पसारी कि जैकी दिखाई पड़े। सहसा दायी गली से जैकी प्रकट हुआ। उसके पीछे पीछे तीन कुत्ते आ रहे थे, जो रह रहकर उसकी दुम सूंघते चल रहे थे। मैं उसकी तरफ बढ़ा और पुचकार के साथ पुकारा, 'जैकी जैकी!' उसने भयभीत आंखें उठाकर मेरी तरफ देखा। मैं उसको दुलारने के लिए करीब पहुंचा तो तीनों कुत्ते पीछे हट गये। जैकी मेरे पास पहुंचते ही सहमकर अंग सिकोड़ने लगा। मैंने उसकी गर्दन और पीठ पर थपथपी दी, तो वह जमीन पर अधलेटा सा हो गया। पुचकारते हुए यही क्रिया दोहराने पर जैकी ने मेरी तरफ आंखें फेरी—अपार याचना थी उसकी आंखों में। लगता है कि कुत्ता को भी इंसानों की तरह जार जार रो पाने का वरदान मिला होता, तो जैकी भी उन क्षणों में यही करने लगता।

मैं जैकी को हौसला बंधाकर सीधा नन्दशरणजी को ढूंढने गया। इस बार झिझक की जगह एक अनूठे आत्मविश्वास ने ले ली थी। मिलते ही मैंने उनसे जैकी को किसी सूरत में फिर बाड़े में न छोड़ने की मनाही बड़े अधिकार के साथ कर डाली। वे आंखों में गहरा अचम्भा लिए देखते रह गये। थोड़ी देर बाद प्रभाव में आये हुए आदमी की तरह बोले "नहीं, मैं

भला जैकी को बाड़े में क्यों धकेलूंगा तुमने इतना बड़ा काम किया है, यह खुशी की बात है। मैं उसका पूरा ध्यान रखूंगा कि वह फिर बाड़े की तरफ मुंह भी न उठाए।"

इसके बाद मैं रोज जैकी को देखने चला जाता था। जाते हुए उसके लिए सिंधिया की बेकरी से सूखे बिस्कुट खरीद ले जाता। कुछ दिन वह मुझसे सहमा-सहमा रहा, फिर बड़े चाव से मेरे दिए बिस्कुट खाने लगा। उसके साथ-साथ मैं उधर के दूसरे कुत्तों को भी बिस्कुट खिलाता। सब कुत्तों के बीच में खड़ा खड़ा वह निर्भय होकर बिस्कुट खाने लगा, तो मुझे अपार खुशी हुई। मैं देख रहा था कि उसके फालतू डर की गाठें धीरे-धीरे खुलती जा रही थीं और वह बाहरी दुनिया के साथ हलचल बढ़ाने लगा था।

यह समाचार कि मैं जैकी को बेकरी के बिस्कुट खिलाने जाता हूं शम्भूशरणजी ने सविस्तार पिताजी तक पहुंचा दिया था। एक दिन मुझे बुलाकर उन्होंने सारी पूछताछ की। मैंने संकोचपूर्वक सारा किस्सा बयान किया, तो वे बोले, 'ऐसा करें, जैकी को तुम्हारे साथ होस्टल भेज दें। इतनी लगन दिखाओगे, तो तुम उसे कुत्ते से इंसान बना डालोगे।"

मैं आंखें झुकाये बैठा था। पिताजी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर फिर कहा, "शाबाश!" मैं सुनकर गदगद हो गया। सहमा मेरी रुलाई फूट पड़ी, और ठीक इसके पीछे मैंने मुस्कुरा दिया—एकदम उजली और निष्कलुष मुस्कान रही होगी वह, जो आज भी अपनी याद भर से गुदगुदा जाती है।

८

छुट्टियां खत्म हो गयी थीं। वक्त कैसे बीता, कुछ हिसाब ही नहीं रहा। मुझे जैकी को छोड़कर होस्टल चले जाना पड़ा। पहले कुछ दिन मैं बहुत अनमना सा रहा। हर पल जैकी की याद सताती रहती। उसकी सोनलिया काया और उदास उदास आंखें अलग अलग भाव मुद्राओं में मेरी आंखों में मंडराती रहती। मैं जब तब घर पर चिट्ठी लिखने बैठ जाता। इस बार पिताजी मुझे जैकी के पूरे समाचार लिखते थे। शम्भूशरणजी के

हवाले से मुझे खबरें मिलती रही कि जैकी बाहर ही है, मौज म है, सबसे हिलमिल गया है, डरता नहीं, गुर्राता और लडता भी है। जैकी व हाल-चाल पढ़कर मैं मारे खुशी और आह्लाद म झूम उठता था।

लेकिन धीरे धीरे यह सिलसिला ढीला पडता गया। एक बच्चे के लिए दुनिया नित नये चोले बदलकर सामने आती है। वह उसके दिन और दिमाग को हमेशा नयी अदाओं स लुभाती रहती है। मेरे सामने भी पढ़ाई लिखाई, चित्रकला और सगीत ड्रामो से ठसाठस होस्टल की विराट दुनिया थी, जिसम जैकी के लिए हमेशा एक सी जगह बनाये रखना सभव न हुआ। उसकी याद धुए की गति से उठी थी, जो चौडा आसमान पाकर छितराती चली गई। जकी घर से जुडी अनगिनत यादो की लडियो म एक लडी बनकर कहीं खो चुका था।

२

ये बातें कितनी पुरानी हैं? एक कुत्ते की आयु के हिसाब स सोचें, तो इतनी कि जकी को शायद आज कहीं नहीं होना चाहिए—न बाड़े म और न बाहर! तब भी जैस उसकी उपस्थिति ही नहीं, अनुपस्थिति तक हर पल जीवित है—मेरे साथ! आप शायद यह सवाल जरूर करना चाहग कि जैकी से मेरी अगली मुलाकात हुई या नहीं? यदि मैं आपको इस सवाल की कगार तक साथ न ला सका, तो समझूगा कि यह किस्सागोई बेकार रही। लेकिन नहीं, मुझे यही लगता है कि आप इस सवाल का जवाब चाह रहे हैं। काश इसके जवाब म मैं उस व्याकुलता का चौथाई भी आप से बाँट सकता, जो मैंने जैकी स अपनी अगली मुलाकात करने जाते हुए अकेले भोगी थी।

जकी को देखे मुझे चार साल बीत चुके थे। उसको देखने की चाह मेरे अन्दर किसी सप सी कुडली मारे बैठी रहेगी और हल्के से इशारे स फुफकारकर फन उठायेगी, ऐसा मैं सोचता भी न था। होस्टल म फिर लौटना उस कस्बे म कभी हुआ ही न था, जिसम जकी को मैं न पहले बाड़े म और बाद मे बाड़े से बाहर देखा था। पिताजी पदोन्नति लेकर जयपुर आ बसे थ। चार लम्बे बरसो की परतो ने मेरे बचपन को कई गुना भारी कर

ढाला था। मैं कद काठी, चाल ढाल, आवाज और पहनावे तक से बड़ा नजर आने लगा था। स्कूल की बजाय मैं कालेज जाने लगा था। कॉलेज के एक ग्रुप के साथ ही मेरा उधर जाना हो रहा था—जैकी के कस्बे से सत्तर किलोमीटर दूर जिला मुख्यालय। वहाँ कोई नाटका की प्रतियोगिता थी, जिसमें मेरे कॉलेज के नाटय दल में मैं भी शामिल था। हम वहा लगभग दस दिन ठहरना था।

घलत वक्त जैकी की याद का दूर दूर तक भी कोई निशान न था। वहा पहुँचकर भी शुरू के चार पाच दिन हमारी प्रस्तुतियो ने हम सास तक न लेने दी। जैकी जसे अभी तक केंचुल चढे साप सा बिना हिले डुले भीतर पडा था। तभी हम फुर्सत मिली। हमारी प्रस्तुतिया निपट चकी थी और हमे सिर्फ परिणामो की प्रतीक्षा थी। हमम से ही किसी न 'धोरे' देखने की इच्छा प्रकट की थी। यही था वह इशारा! वह कस्बा, जिसमे मैंने जैकी के साथ अपने बचपन का एक मजेदार हिस्सा बिताया था, रेतीले टीबो के लिए खूब प्रसिद्ध था। कुछ बडे होने पर मुझे फिल्मो के माध्यम से ही पता चला था कि उस बेरौनक कस्बे मे भी एक प्रसिद्ध होने जैसी चीज थी—कस्बे के एक छोर पर पसरे हुए सोने के बुगदे जैसी पीली रेत के धोरे! फिल्मो म पर्दे पर देखे इन्ही धोरो को जीन जागते देखने की बात चली थी, कि मुझे अपने भीतर आधी सी उठती जान पडी। वह आरपार गलिया, हवेलियो, सेठ सेठानिया और विशाल बाडा का कस्बा मुझे जैकी के माफत पुकार उठा। सबसे पहले जैकी और फिर गब्दरणजी ने भी मुझे बुलाया। मैंने बढ चढकर 'धोरे' देखने की बात का समथन किया और इस पर आम सहमति हो गई।

बस से डेढ घटे की यात्रा थी। मेरे अलावा सब पर स्वच्छन्दता और मस्ती तारी थी। मैं चुपचाप बैठा हुआ बस की खिडकी से पीछे भागता बोरटिया का जगत देख रहा था। मेरे पास बैठे साथी न मुझे दो तीन बार कोंचा कि कहा खो गया हूँ! मैं उसे क्या बताता? मैने किसी को नहीं बताया था कि मैं इस जगह स परिचित हूँ—शायद इस डर स कि कहा जकी के बारे म कुछ मुह से निकल न पडे! मेरे साथियो के लिए जैकी का क्या मोल ठहरे, इसकी कल्पना ही दुश्वार थी। वे सब उस जगह क

पले बढ़े थे, जहां मैंने कुत्ता को या तो लोगों के घरों में जंजीरों से बंधा देखा था, या फिर नाजुक नफीस गोदियों में इठलाते! जैकी जैसे कुत्ता का जिन्दगी में उनकी दिलचस्पी जगाना, उन्हें अपने पर हँसने की दावत देना था। इसलिए मैं अपने में लीन चुपचाप बैठा था, और मेरी चुप्पी में जैसे मिसरी घुलती जा रही थी। इस मिसरी की डली का नाम था— जैकी!

इन चार बरसों ने जैकी पर क्या क्या रंग चढ़ाये होंगे? वह मुझे पहचान तो लेगा? पूरी यात्रा में उसके सामने आनेवाले स्वरूप की कई कई कल्पनाएँ मेरे मन को आच्छादित किये रहीं। रास्ता जैसे छोटा होने की बजाय लम्बा होता जा रहा था। किस पल जाकर मैं जैकी के सामने खड़ा होऊँगा इसी मिठास भरी व्याकुलता से मैंने सबके साथ अकेले यात्रा पूरी की।

मेरे साथी बस से उतरते ही 'चोरा' का रास्ता ढूढ़ने लगे। उनकी पूछताछ से खिचकर तांगवाले दौड़े आए और एक प्रकार की अफरा तफरी मचने लगी। हर एक तांगवाला अलग अलग ढंग से उन्हें लुभाना चाहता था कि गांव की सीमा तक वे उसके तांगे में चले चलें। मुझे मौका सा लगा और मैं चुपचाप वहां से सरक लिया। मेरे कदम कस्बे का चप्पा चप्पा पहचानते थे, छोटे से छोटा रास्ता चुनकर वे मुझे वहीं ले पहुँचे— जैकी के बाड़े! बाड़ा ज्यों का त्यों मुंह बाए सा मौजूद था। मैंने चाकर नजर पसारकर देखा जैकी शायद कहीं नजर आ जाए। हल्का सा संशय मन में जन्मा कि मैं उसे पहचानने में न चूक जाऊँ! परन्तु तत्काल ही अन्दर से आवाज आई—नहीं! जैकी कहीं होता, तो नजर आता। आखिर मैंने नन्दनारणजी का दरवाजा खटखटाया।

नन्दनारणजी हर भांति जहां के तहां बने हुए थे। अलबत्ता उनकी पालिश बीतते बरसों खुरच डाली थी। उनके मोटे तेल से सने रहनेवाले बालों में से सफेदी बढ़ चढ़कर ताक झांक कर रही थी। मैंने अपने अचानक चले आने के बारे में सविस्तार बताकर वजन इस पर रखा कि मैं उनसे मिलने चला आया हूँ तो वे भाव विभोर दीखने लगे। मेरे पिताजी के दबदबे का भार माना फिर से उनके कंधों पर उतर आई। वे पिताजी का

बुरी तरह याद करने लगे। बात बेबात खिलखिलाने की उनकी आदत भी यथावत थी, जिससे कांपने लगा। हुआ मैं असल बात का इंतजार करने लगा। आश्चर्य की बात थी कि उन्होंने मेरी अथाह ललक पर कोई ध्यान नहीं दिया, जैकी के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। मुझसे रहा नहीं गया और बरबस मैंने पूछा, "वह कैसा है, जैकी ?"

"जैकी ?" अपने ललाट में बल डालते हुए उन्होंने याद करने वाली मुद्रा में कहा, "वह बाड़े का कुत्ता ?"

"हां, जिसे मैंने बाड़े में बाहर ।"

मेरा वाक्य पूरा होने से पहले ही नन्दशरणजी चिहुंक पड़े, 'अरे हां, याद आ गया लेकिन जैकी तो कभी का मर चुका !'

"नहीं !" मेरे मुंह से बेसाख्ता निकल पड़ा।

"हां, भई !" वे नसीन किस्म की तटस्थता धारण किये हुए बोलने लगे, "उसे मरे तो बहुत दिन हो गये।"

"कैसे मरा ? किसने मार डाला उसे ?" पूछते हुए जैसे मेरी जीभ में ऐंठन हुई।

"एक ट्रक ने।" वे बताने लगे, "लेकिन जैकी खुले में मरा, बाड़े में नहीं। उसे जरूर किसी की नजर लग गई होगी, कैसा प्यारा कुत्ता था। तुम्हें शायद पता नहीं, वह किसी एक गली का कुत्ता नहीं था। पूरा कस्बा उसका अपना था। नहीं तो वह वहां कैसे पहुंचता ? बाजार से चार गली बाद कृषि मण्डी वालों की बाईं पास सड़क है न, वहीं। देखनेवालों ने बताया कि जैकी की कोई गलती नहीं थी, वह सड़क के किनारे अपनी मौज से चल रहा था। पीछे से लड़खड़ाती ट्रक आई और उसे बचते बचते भी चपेट में ले लिया। ड्राइवर नशे में धुत्त था, जैकी को कुचलकर खुद भी मारा गया। ट्रक सड़क में पलटा खाकर माचिस की डिबिया की तरह मुड़की पड़ी थी। मुझे क्या पता लगता, अगर बच्चे आकर नहीं बताते। मैं खुद वहां गया था। जैकी का पिछला हिस्सा तो सड़क पर छितरा पड़ा था, लेकिन मुंह एकदम सलामत था। मरने के बावजूद उसकी आंखें खुली थीं। मैंने उसे तुरंत पहचान लिया कि अपना जैकी ही है ।'

बोलते बोलते शब्दशरणजी निःशब्द हो गये। कुछ देर मुझे घूरकर

उन्होंने रुक फिर सहमकर पूछा, "तुम रो क्यों रहे हो?"

मेरे पास इसका कोई जवाब न था। हाँ, मैंने खुद जाना कि मेरी आँखों पर पानी की चादर चल चुकी है। दोनों आँखें हथेलियों से पोंछकर मैं दादाशरणजी की आँखों में झाँकने लगा। पल भर में ही मुझे अपना इच्छित दृश्य नजर आया—मेंढक की मनहूस एकमेव जवाँ की लाश! पूरा धड़ खून से लिथड़ा हुआ, मगर उसका प्यारा मुखड़ा ऊपर उठा हुआ था मेरी तरफ! मैं दादाशरणजी की आँखों के पार, उसी की आँखों में झाँकने लगा था। वे भोली आँखें आज याचना से नहीं, कृतज्ञता से भरी थीं। भला जैसी मेरे किस उपकार के लिए कृतज्ञता जतला रहा था? बचपन से लेकर आज तक मैं न जाने कितनी बार इस जिज्ञासा के अथाह समुद्र में तैरता उतराता रहा हूँ, शायद कभी कोई मोती हाथ लगेगा!

विरासत

मदजी थे, ठीक मदजी। अपनी सदैव की पुर्तीली चाल चलते हुए उन्होंने रोड लाइट का दायरा पार किया, तो मैं अच्छी तरह पहचान गया। जैसा कि अधिकांश लोग करते हैं। ममखरी करने के लिए ही मैंने उन्हें पुकार-कर पूछा, "कैसे मदजी, अब रात को?"

"कुण बीरा?" रुकते और मेरी ओर मुड़ते मुड़ते उन्होंने अपनी हथेली का आला पर छज्जे की नवम में ठहराकर पूछा। रात और वह भी सर्दी की रात। धूप छोड़, रोड-लाइट का भी कोई बेहिसाब उजास नहीं कि आला क्यों लगे। पर मदजी की किसी बात में तक ढूढ़ने का कष्ट तो कभी की पुलिस ही नहीं करती, तो मैं क्या करता। कुछ करीब जाकर मैं जस उनके इस छज्जे की जद में पहुँचा और बोला, "पहचाना नहीं?"

"नहीं बीरा!"

"यह तो मैं हूँ, सज्जन।" मैंने नाम बताया।

"जैमन का छोरा?"

"हां" मैंने हामल भरी।

और मदजी मेरे और करीब सरक आये, "रात को जल्दी घर जाया करो, बीरा! तुम्हें पता नहीं, लाठियाँ चल गईं तलवारें निकल आईं खून खराबा हुआ अब कोई भरोसा नहीं!" आखिरी वाक्य तक पहुँचते पहुँचते उनकी आवाज फुसफुसाहट में तब्दील हो गई और आवाज के साथ ही एक कँपकँपी किसी अनजानी ठौर से उभर आई।

"कहाँ? कब?" मैंने चौंककर पूछा।

"कहाँ? कब?" उनकी आवाज फिर ऊँची हो आई और लगा कि

मरे अनजान हाने पर व रीम म आ रह हैं, "स्टशन के रास्त म, और कहाँ ?"

"किसलिए ?"

'किसलिए का मुझे नही पता पर मैं क्या कभी झूठ बोलता हूँ ?" कहकर उ होन अपन हाथ को अपनी खास अदा म झटकाया और चल पड़े। मैंने दो-तीन बार पुकारा, पर वे कहाँ सुनन लगे !

मैं अवम सयाना हुआ हूँ, मैंने मदजी को बावरा ही देखा है। पर मैं अभी तक यह तय नही कर पाया हूँ कि वे क्या सचमुच बावरे हैं और हैं तो कहा स ? उनके अतीत के नाम पर अलग-अलग मुहो से अलग-अलग किस्से सुन हैं। सबसे पहले ता अपने मा बापू से ही सुना कि मदजी क भाइया न धन के लोभ म आकर इन पर किसी बगाली तान्त्रिक से टोना करवाकर इनकी यह गत बना दी। कहीं से सुना कि इनका बेटा ट्रक की चपेट मे आकर मरा, तबसे इनका चित्त बेकाबू होकर पटरी से उतर गया। और भी कई किस्से जो सब याद ही नही रह सके।

जो हो, एक तरह से कह सकता हूँ कि मेरा और मदजी का पूरा दिन प्राय साथ साथ ही व्यतीत होता है। मैं इस कस्बे के कस्बाई बाजार म उसी पीपल के सामने पान बीडी की दूकान लगाता हूँ, जिसके गट्टे पर बठ कर लोगो के अनुसार मदजी अपनी 'मूग' (बावरापन) बिखेरते है। मुझे भी सचमुच कई बार लगता है कि इस पीपल मे किसी जिन या प्रेत का वास है जो इसके नीचे आते ही मदजी पर सवार हो जाता है और व चारो दिशाओ मे आग फेंकन लगते हैं। मेरे सामने यह सिलसिला उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी मरी दूकानदारी।

मुझे दूकान लगाय दो दिन ही हुए होगे कि मैंने पहले पहल मदजी को पीपल गट्टे पर प्रकट होते देखा।

शाम हो गई थी। आस पडौस की चाय दूकानो की भट्टिया दुबारा जलाई जा रही थी और सीलनखाई लकडियो का पीला पीला धुआं चोफेर घुमड रहा था। पूरे दिन का मद गुबार भी बाजार के मुह पर छाया हुआ

था। मैं मुंह पहचाने दो ग्राहकों के लिए पान लगा रहा था और साथ ही उनसे बातें भी कर रहा था, तभी उत्तर की ओर प्याऊ के पास तीखा शोर सुनाई पड़ा। सब निगाहें एक साथ मुड़ीं। मदजी कभी दायां तो कभी बायां हाथ जमीन की ओर झटक-झटककर मुंह छूट गालियां बकते, अपने नंगे पैरों कूदते-से आ रहे थे और पीछे तीन चार बाल गोपाल। मैं मदजी को जानता तो था, पर उनका यह रूप पहली बार देख रहा था। शायद सबसे ज्यादा भौंचक मैं ही था। मेरी मामूली निगाहों तले जितने चेहरे आये, मैंने सबको देखा होगा और लगा होगा कि सब चेहरों पर मदजी की इस हालत से जन्मा कौतुक रस विराज रहा था।

मैं हड़बड़ा-सा गया।

मदजी का चेहरा ही नहीं, जैसे उनका अंग-प्रत्यंग धनुष कमान की तरह खिंचा जा रहा था और उन्होंने अपने पट का समूचा जोर गले में ठेल रखा था। जरा सी देर में वे पीपल गट्टे पर चढ़ गये। एक बार चुप हुए। उनकी नाक खिंचकर जैसे ऊपर हो गई। चुप होकर उन्होंने नाक को और ऊपर खींचा और गट्टे की गोलाई में फुर्ती से चक्कर पूरा किया, फिर ठीक मेरे सामने आकर थम गये। मैंने गौर किया कि उनकी रीसाई आंख भरे चेहरे पर ठहरी हुई है। उन्होंने मुंह ऊंचा उठाया और बोलने लगे, 'मर गये, सब मर गये हैं कोई जिन्दा नहीं। कुत्ते स्साले यह खानदार दिनभर खाने की कुर्सी गन्दी करता है स्कूल में दारू की भट्ठी है, उसे मेरा बाप बरामद करेगा ?"

मदजी फिर कुछ देर चुप रहे। सप के फन की तरह अपनी गर्दन को डुलाया। मैंने देखा, अब कई चेहरों पर से वह कौतुक रस लोप हो गया और वहां अचम्भे और दुःख की छाया मंडराने लगी।

पीछे से एक बालक गट्टे पर चढ़ा और मदजी के कमीज को झटककर फिर उतर भागा।

'जान से मार दूंगा ठहरो मादर !" कहकर मदजी गट्टे से कूद पड़े और उसी तरह हाथ झटकते, कुलांचें भरते बाहर हो गये।

बाजार में आई हलचल कुछ देर और नहीं थमी।

लोग मुसकाते मुसकाते अपने धंधों में उलझने लगे।

मुझसे कुछ देर पान की डंडी उठाते नहीं बनी, तो मेरे ग्राहकों में से एक वाला, 'क्या हुआ भइये ? यह भदजी के खटके हैं बोलो, इस साले को पता है कि स्कूल में दारू की भट्ठी है ।"

'इसे कैसे पता ?" मैंने पूछा ।

'बावरा है रे !" उसने सयानेपन से कहा, "छोरों ने छेड़ दिया होगा और कहीं से दिमाग में खयाल आ गया होगा बस बक लिया " कहने वाले ने गर्दन झटकी और मुस्करा दिया ।

इस बात को बरस बीते, पर अभी मुझे साफ नहीं कि छोरों के छेड़ने से स्कूल में दारू की भट्ठी होने का क्या सबब हो सकता था ? और भी उलझन तो तब हुई, जब स्कूल का चपरासी भीमाराम छः महीने बाद ही स्कूल बाउण्ड्री में गैर कानूनी दारू बनाने के जुर्म में पकड़ा गया।

इस घटना के बाद, जाने कैसे मैं भदजी के नये शगूफों का इन्तजार करने लगा । वे पीपल के प्रेत से मुक्त कहीं आते जाते दीखते, तो या तो अपनी आदत मुताबिक खुद ही पुकार लेते, या मैं ही पहल कर देता । कई बार वे बालते ही पहचान जाते और कई बार अपने खास अंदाज में पूछ भी लेते 'कुण बीरा ? पहचाना नहीं बीरा ।"

बातचीत भी इसी तरह होती । कभी बहुत छोटी सी, तो कभी मगजी के गाव के हर आदमी से घनिष्ठ परिचय और उनसे जुड़े संस्मरणों की लंबाई तक खिंच जाती ।

एक दिन दूकान से निपट कर घर जा रहा था । सर्दी थी । नौ-दस बजते-बजते रात एकदम सन्नाटे में डूबती जा रही थी । हल्की हल्की धुंध उतर रही थी । तीन गलियों का बाजार पार करने के बाद, सूनी और नगरपालिका के खंभों पर लटकते फ्यूज बल्बों के अंधेरे में दबी हुई गलियों में, मेरे अन्दर का उजास और कल्पना का अभ्यास मेरे साथ था ।

सेठ धनराजजी की हवेली पार की ही थी कि आवाज आई, "कुण है, बीरा ? '

मैंने कदम रोके और अंधेरे में देखने लगा ।

"बोला नहा कुण है ?"

"मदजी !" मैंने जवाब दिया, "यह तो मैं हूँ, सज्जन पहचान लिया ?"

"हाँ हाँ पहचान लिया ।" आवाज के साथ साथ अँधेरे म से मदजी सरकते हुए आ गये। मुझे अचम्भा हुआ अर दोपहरी म घूर-घूरकर दखनेवाले मदजी आज फकत एक बार बोलते ही पहचान कैसे गये।

"अब, घर ?" मदजी करीब आकर बोले।

"हाँ, मैं तो घर जा रहा हूँ, पर आप इस ठड और अँधेरे म ?'

"सेठा की हवेली की हिफाजत " उनके बोलने से मुझे लगा कि अँधेरे म अदश्य उनके चेहरे पर व्यग्य की लकीरें जरूर खिची होगी।

"क्या, आपका यहा क्या धरा है ?" मैंने मजाक करने भर का पूछा, "या सेठ ने इस चौकीदारी की तनख्वाह बाध दी ?"

उन्होंने मजाक पर बिलकुल गौर नही किया और फिर पूछा, "तू है, तो सज्जन ही ?"

'हाँ कम से कम एक तो वही हूँ ,?"

"तो चल, मेरे घर "

मैं इस प्रस्ताव से चौंक पड़ा।

यह आज कौन सा नया बावरापन है ?

मदजी का घर यह मुझसे छिपा नही है। मुझसे क्या, सभी जानते हैं कि प्रमुख्याल मिडिल स्कूल से सटा हुआ, ढहकर खडहर हो चुका और चारो कोनो चौपट मदजी का घर ही है। लोग कहते हैं, भाइयो की हिस्सेदारी बँटी तो मदजी के हिस्से यही घर आया। इसके ढहने के अन्तिम सिलसिले का तो मैं भी साक्षी हूँ। लोग इसे सौ बरस पुराना बताते हैं। कहते हैं, इस कस्बे को जिस साल पास की रियासत के राजा ने अपने नाम पर बसाया, उसी साल यह हवेली मदजी के पुरखो ने यहाँ बनवाई। इस हवेली के ढमढेर मे बचीखुची किसी छत के नीचे मदजी अपने पूर-पल्ल रखे हैं और मन की किसी तरग मे यहाँ स्नान और रोटी-पानी भी करते हैं। पर मुझे अपनी इस हवेली म, जिसके पास फटकने से माएँ अपने

मदजी के गले की शिराएँ उभर आईं। ललाट पर खिंचाव और पसीना गट्टे पर खड़े खड़े ही पहलू बदला और बोलते गये, "खा गये सारी दुनिया हजम इनके पेट मे फाड़ो इनका पेट जाने कितना सोना चांदी और खेत पट्टे निकलेंगे ।"

मदजी पता नही क्या-क्या बोलते, तभी पहलवानी डील डौल वाला नंगे-बदन आदमी कही से निकलकर आया और गट्टे पर चढ गया। उसकी आंखो म खीरे (अगारे) उछल रहे थे। उसने अपना चौडा पजा मदजी की गदन पर गडाया और उन्हें नीचे धकेल दिया। मदजी सीधे जमीन पर ठहरे। उठने को सँभलते मदजी कि उसने उतरकर एक पूरे हाथ की जमा दी। इतने मे गल्लेवाले केशरोजी भागे। मैं तो जैसे अपनी ठौर ही चिपककर रह गया।

आज से पहले मदजी को पिटते कभी नहीं देखा था। पीटने वाले का डील डौल देखकर मैंने सोचा कि अब मदजी मे कुछ बचा भी है, या नही! केशरोजी ने पहुँचकर उसे एक तरफ किया कि मदजी उठ खडे हुए, "मार मार जितना जोर है, आजमा मुझ पर जानता हूँ, तू सुबह से मेरे पीछे घूम रहा है तू अपने सेठ की नमक हलाली कर, पर वह तुझे भी नही छोडेगा ।"

वह केशरोजी और दूसरो के रोके रुका था। पर उसकी आँखें अब भी गुस्से से बाहर निकल रही थी।

"कौन है तू ?" किसी न आखिर उससे पूछ ही लिया।

"यह तो बावरा है इसकी बकवास से क्या होता है कोई नहीं सुनता ।" केशरोजी ने शायद उसे पहचान लिया था और उसे तसल्ली देन लगे।

मदजी कुछ देर खडे खडे हाँफते और बोलते रहे, फिर पत्थर ढूँढने के लिए मुडे और मुह ही मुह मे बडबडाते हुए एक ओर चले गये।

नहीं, ठीक था, दो-चार पड जाती तो दिमाग कुछ ठिकाने आता ।" कचिरा और उस्तरा म धार लगानेवाला सिकलीगर बोला। यह सिकलीगर इसी पीपल की छाया म अपना चक्का लेकर बैठता और मदजी के क्रोध म सबसे ज्यादा सताया जाता। मदजी के धार लगाना शुरू करते

ही, यह अपना धधा छोडकर किनारे हो जाता और उनके लौटने पर ही लौटना।

"इस किराड (वनिये) की यह हिम्मत गाँव के गूगा-बावरों के पीछे अपन लठैत लगाता है यह तो भेदाराजी न बरज दिया, नही तो देख लेते उस मुस्टडे का ।' मूज वाँस वाले ओमजी अभी बडबडा रहे थे।

एक बात है यह मदिया खबर लाता है, उसमे कुछ न कुछ तन तो होता है ।" बूढे प्रेमसुखजी बोले।

"तत हो या पत किसी के घर मे झाँकना किससे बरदाश्त होता है। तुम हम से भी नही होता सच कहूँ ।' प्रेमसुखजी के जोश पर इस अनुत्साहजनक उत्तर से पानी पड गया। दोनो साथ साथ मेरी दूकान आ पहुँचे। प्रेमसुखजी को दिनभर पान चरने की आदत।

बाजार धीरे धीरे अपने म लौटने लगा।

कोई दस दिन हो गये मैंने मदजी को नही देखा। शायद ही कोई, मुझे छोड, उनको याद कर रहा था। हाँ, सिक्लीगर निश्चितता से अपना पहिया घुमाता, उससे कचियाँ उस्तरे रगड रगडकर चिनगारियाँ उछालता अपने भलला का शुक्र मनाता होगा।

मेरे तो मदजी के लिए पूछने का बात होठो तक आ आकर ठहरने लगी। पूछा किसी से नहीं गया। पता नही क्या सकोच था ? शायद यही रहा हो कि इस गूगे बावरे म फालतू दिलचस्पी दिखाना, कोई समझदारी की बात नहीं मानी जायेगी। फिर अगर मदजी का पूछू, तो कस्बे म और भी दो चार गूगे-बावरे है, उनकी मुझे क्यो फिक्र नही ?

मन मे बात उठती और दब जाती।

आखिर मुझे लगने लगा कि बाजार मदजी के बिना सूना सूना हो गया है।

मुझे किस्म किस्म के अनुमान होने लगे। क्या पता, सेठ कानदानजी ने अपने लठतो से मदजी को लम्बा न करवा दिया हो ! सेठजी के हाथ

बहुत लम्बे हैं। एक प्रान्तीय मन्त्री तो उनका सगा-सबधी है। उनकी सास और उनके दमन्थे को सरे-बाजार चुनौती देना कोई आसान काम है ?

जो हो, मदजी को याद करते-करते बेचनी बढ़ती ही गई। मैंने निश्चय किया कि मैं आज उनकी खबर लेने उनके घर जाऊँगा। कम से कम वहाँ तक तो मैं जा ही सकता हूँ।

दिन की आखिरी चमक बची हुई थी कि मैं अपनी दुकान समेटने लगा।

"कैसे सज्जन, आज जल्दी ही ?" पान खाने को पहुँचे 'क्लाथ स्टोर' वाले नन्दू ने पूछा।

"हाँ, आज घर पर थोड़ा काम है।"

"पान तो खिलाकर जा ।"

मैंने सोचा कि इस एक को तो हाथ का उत्तर दे ही दूँ, पर तुरन्त ही मेरी आँखों के आगे मदजी के घर का अँधेरा और उनके ठिकाने तक पहुँचने के मार्ग की कठिनाइयाँ घूम गई। सूरज तेज-तेज डूबता जा रहा था। मैंने मन पक्का किया और मुकर गया, "नहीं यार, बापू की तबियत कुछ ठीक नहीं ।"

फिर वह कुछ नहीं बोला।

मेरे पैर यों उठने लगे, जैसे मैं सचमुच ही अपने बापू की तबियत की चिन्ता में घर जा रहा होऊँ।

सूरज शायद धरती के किनारे आज अपनी आखिरी साँसें ले रहा था।

मदजी के घर तक पहुँचा, तो सन्नाटा पूरी तौर पर नहीं खिचा था। एकाध औरत अपने घर के आगे बैठी बरतन माँज रही थी और दो तीन बच्चों ने कोई 'रम्मत' माँड रखी थी।

मैंने देखा, अँधेरा अब सब कुछ लीलने ही वाला है, पर फिर भी संकोच मुझ पर हावी होने लगा। देखनेवाले क्या सोचेंगे ? इसको इस गूँगे बावरे से कौन-सा 'कमतर' पड़ा है ? पर मैंने सोचा कि अँधेरे के घिरने तक देर बहुत हो जायेगी और संकोच को परे धकेलते हुए मैंने मदजी के घर की बिखरी हुई सीमा में पैर बढ़ा दिया।

बीच मे खाली जमीन थी, जिसमे खड्डा के साथ साथ नाम-बनाम बटे और घास उगी हुई थी। जिसे एक शब्द मे 'अलसेट' कहा जाये। कुछ परे एक दीवार रामभरोसे सी खडी थी, जिसकी बिना दरवाजे की चौखट मे से ढहे हुए आसरो का मलबा पडा दीख रहा था।

मैंने चोर की मानिंद धीरे से चौखट मे मुह डाला। दायी तरफ एक साबत आसरा दीख पडा। इसकी झुकी हुई चौखट का एक दरवाज़ा अधढका पडा था।

मैंने चौखट तक जाकर हल्के से आवाज दी, "मदजी आ मदजी!"

कोई जवाब नही आया।

पर जाने कैसे मुझे भरोसा हो गया कि मदजी अन्दर हैं। मैंने दरवाजे की जग खाई कडी को हल्के-से बजाया। मुह दरवाजे के करीब झाँककर आवाज लगाई, "मदजी!"

दो तीन बार पुकारने पर अन्दर से दबी दबी आवाज आई, "कुण है, बीरा?"

"मदजी, खोलो मैं सज्जन हूँ!" मैं थोडा ऊँचा बोला।

और जैसे कोई करट दौड गया हो, पलभर मे ही दरवाजे के पल्ले चीख पडे और आसरे के अँधेरे म मेरे सामने खडे मदजी को मैं उनकी स्थाई छवि के कोणा से पहचान गया।

अब अँधेरा पूरी तौर पर घिर आया। जैसे एक मुद्दत ही मदजी के घर का सन्नाटा घना हो गया।

"सज्जन बीरा!" मदजी कुछ पल ठहरकर बोले।

मुझे राहत मिली कि उन्होने पहचान तो लिया। इत्ते म वे फिर बोले, 'आ बीरा अन्दर आ जा!'

"पर मदजी।" मैं बोला।

"अँधेरा है अँधेरे मे डर लगता है न?" बोलकर मदजी चौखट से बाहर निकल आये। फिर बोले, "एक बार ठहर मैं अभी उजाम करता हूँ।'

मुझे लगा कि मैं कहाँ फँस गया!

मदजी को जीता जागता देखते ही, मुझमे उनको लेकर जन्मी बदनी

पलभर में काफूर हो गई। इसकी ठौर इस माहौल से जन्मी अमूर्त समा गई।

मैं सोचने लगा, यह मदजी क्या आदमी है? अब ढहे-अब ढहे ऐसे आसरे में निर्भय होकर कैसे बैठा रहता है? और भी सवाल उठने लगे कि पता नहीं किस ढेर से एक लालटेन उठाए मदजी लौट आए। अँधेरे में अनेक क्रिया-कलापों का अनुमान करता रहा। शायद उन्होंने लालटेन का काँच उतारा और उसकी पुरानी कालिख अपनी धोती के छोर से छुड़ाई, फिर लालटेन के पेंदे को हिलाकर देखा कि अन्दर तेल बजता है या नहीं? तेल जरूर था, क्योंकि उन्होंने कहीं से दियासलाई निकाली और घिसकर बत्ती जला दी।

एक पीला उजास उस श्मशानी माहौल को उजागर करके और मनहूसियत फैलाने लगा।

मदजी ने निश्चिंतता से लौ को सम किया और काँच लगाकर लालटेन हाथ में लटका ली।

उजास में मैंने मदजी को गौर से देखा। धोती सदैव की तरह मैली-कुचैली और बेतरतीब लपेटी हुई, पर वैसे ही अधफटे कुर्ते की ठौर आज वे नंगे-बदन थे। बाहर तीखी ठण्डी हवा चल रही थी। यहाँ चाहे फूटी ही सही, दीवारों की ओट थी तब भी, ठण्ड तो आखिर ठण्ड थी।

मेरी निगाह मदजी के चेहरे पर पड़कर ठहर गई। लालटेन के पीले उजास में मैंने देखा, उनके एक गाल पर सप्ताह-दस दिन पुरानी खिचड़ी दाढ़ी, दूसरे पर ठौर-ठौर छूटे हुए गुच्छों के बावजूद खुरची हुई। मदजी का चेहरा इस तरह बड़ा अजीब हो गया था। कहा जाए तो—डरावना!

"आ, अब चला आ!" कहकर मदजी ने लालटेन ऊपर को की और पहले खुद आसरे में घुसे और फिर पलटकर मुझे रास्ता दिखाने लगे।

मैं अब भी पशोपेश में था। मदजी के घर का सन्नाटा जैसे मेरी छाती पर चढ़ बैठा। मेरे पैर नहीं उठे। आखिर मैं पिण्ड छुड़ाने की गरज से बोला, "नहीं, अन्दर नहीं आऊँगा देरी बहुत हो चुकी।"

"क्यों?" मदजी की आवाज फिर पहले की तरह डूबने-डूबने को हुई, "अब अँधेरा कहाँ है, उजास में भी डर लगता है क्या?"

"नहीं, डर की तो कोई बात नहीं मैं तो फकत देखने आया था।" मेरे मुह से जसे बिना विचारे ही निकल पड़ा।

"देखने ! क्या देखने ?" मदजी ने पूछा।

"आपको इत्ते दिनों स नहीं देखा, इसलिए ।" मेरी छाती पर बढता बोझ इस बात से कुछ हलका होता जा पड़ा।

मदजी फिर कुछ पूछते, इसस पहले मैंने ही पूछना मुनासिब समझा, "क्या बात हुई, मदजी काई मांदगी (बीमारी) थी क्या ?'

'तू अन्दर तो आ पहले, बीरा बाहर खड़े खड़े ही सब पछ लेगा क्या ?" मदजी इतनी नरमाई स बोल कि एक अजब सी लाचारगी का अहसास मुझे झकझोर गया।

मैं खुद को उस आसरे मे धकेलने को तैयार हो गया। लगा कि डर इस आसरे का ऊपर ढह पड़ने का उतना नहीं जितना कोई और है। पर और क्या ? आखिर मैंने खुद को लगभग धकेलते हुए चौखट पार की और तीन चार कदम दूर खड़े मदजी के ऐन करीब जा खड़ा हुआ।

अब डर के साथ साथ किसी असह्य ढग की तीखी बदबू का अहसास मेरे नथुने चिचाड़ने लगा। आसरा खास बड़ा नहीं था, लालटेन का उजास जैसे एकत्र होकर थोड़ा सँजार हो गया था। चौफेर तररावाली गली, बदरंग दीवारें आगन मे कच्चे पक्के का कुछ अनुमान होना मुश्किल। दीवारों की जड़ों के आसपास झड़े हुए चूने का ढेर और ऊपर पुरानी डिजाइन वाली छत, जो कहीं कहीं स झुकी हुई या छेदयुक्त। पर सब से दुखदायी थी वह तीखी बदबू जिसके बाबत एक ही अनुमान हुआ कि मदजी जरूर रात बेरात यहीं कहीं पसाब करते रह होंगे।

"बैठ ।' देर तक आसरा टटोलती मेरी निगाहों न जसे ही मदजी की तरफ देखा, वे फटाक से बोल पड़े। उनके हाथ क इशारे के साथ मैंने जिधर देखा, वहाँ छोटे पायों की एक खाट बिछी थी। खाट पर मैल की लोई जैसी शक्ल म एक गूदड़ पड़ा था।

मदजी ने इस बार जुबान से नहीं, हाथ से काम लिया और मुझे कुछ स्नेह और कुछ कठोरता से पकड़कर खाट तक खींच लिया। खाट की इस पर जाकर मैं टिक गया। मदजी ने पहले से तय किसी कील पर लालटेन

लटका दी और आकर उसी खाट पर मेरे सामने बैठ गए।

"आपको ठंड नहीं लगती ?" पूछने के साथ ही मुझे याद आया कि मदजी तो गूँगे बावरे हैं और मुझे फिर बेचैनी ने घेर लिया।

"तुम्हें पता है, आज रात को परमी मास्टरनी क्या करेगी ?" मेरे सवाल पर जैसे उनके कान थे ही नहीं, उन्होंने बहुत कौतुकपूर्ण लहजे में खुद सवाल कर डाला।

"परमी मास्टरनी !" मेरा इस अचीते नाम पर चौंकना बजा नहीं था।

"हाँ !" मदजी ने बड़ी अदा के साथ हामल भरी और अपने दाढ़ीवाले गाल पर हाथ रखकर मुझे घूरने लगे।

मुझे चटपट याद आया कि तीन दिन पहले परमी मास्टरनी की बूढ़ी सास की मौत कुए में पड़ने से हुई थी। लोगों ने तरह तरह की बातें कही थीं। उनमें एक यह भी थी कि परमी मास्टरनी ने अपनी बूढ़ी सास का माल मत्ता तो पहले ही मीठी बनकर सबका लिया था। अब डोकरी उसके लिए बोझ थी और वह उसको मान सम्मान से तो क्या, वक्त से भी रोटी नहीं देती थी। कहते हैं, डोकरी मरी उस दिन तो परमी मास्टरनी स्कूल जाते वक्त उस पर हाथ भी उठा गई थी। डोकरी के लाडले ने भी बराबर अपनी घरवाली को चुप रहकर समर्थन दिए रखा था। दोपहर में बेटा बहू बाहर थे, तो डोकरी गाँव के किनारे सूखे और सूने पड़े कुए में जा पड़ी थी, उसकी जूतियाँ पास पड़ी देखकर किसी राहगीर ने थाने में इतला कर दी, तो थानेवालों ने ही लाश खिंचवाई। सभी कुछ हुआ होगा, पर मदजी को इस बवक्त परमी मास्टरनी कैसे याद आ रही है।

"परमी मास्टरनी आज अपनी सास का ओसर करेगी।" अचानक मदजी झल्लाए से मुँह को विरूपित करते बोले।

'ओसर ? ओसर तो तेरहवें दिन होता है आज तो सिर्फ तीसरा दिन है !"

"हाँ, पर परमी मास्टरनी को आज ही ओसर करना है, आज ही रात को।" मदजी उसी तरह बोले और कुछ देर चुप खींच गए। पर

अगले ही क्षणों में उनकी गर्दन साँप के फन की तरह ऊपर उठी और जिस गाल पर दाढ़ी खुरची हुई थी, उस पर जबड़े की हड्डी की सख्ती उभरने लगी।

मैं समझने लगा कि मदजी में अब पीपल का प्रेत आज यहीं आकर करिश्मा दिखाएगा। वही हुआ। मैं अगली साँस ले पाया कि नहीं और मदजी बैठे बैठे ही उछलकर खड़े हो गए। उनके पेट का जोर गले में समा चुका था और वे बोलने लगे, "थानेवालों की क्या वह डोकरी माँ लगती थी? मा? निकम्मे कहीं के! डोकरी कुए में पड़कर नहीं, भूख से मरी है। यह भूख एक दिन इन सबको खाएगी इस बेटे को, इस बहू को और इन थानेवालों को, जिन्होंने लाश पर भी सौदा किया उसकी लाश उनको सजधज से जलाकर नाम कमाने को दे दी। जिन्होंने भूखा मार मारकर उसे लाश बनाया क्यों दे दी? क्योंकि परमली मास्टरनी का जोबन थानेदार के चित्त चढ़ गया था रे जीवन नाम के ढोल का पोस्ट मार्टम न उबार कर उसकी मोक्ष करवा दी।"

एक एक वाक्य बोलकर मदजी मेरे सामने हाथ झटकते जा रहे थे। जैसे इस सारे दुष्चक्र का कसूरवार मैं ही हूँ और वे मुझे लानत भेज रहे हैं। वे बुरी तरह हाँफ रहे थे और लालटेन के उजास में उनके नंगे बदन पर पसीने के धारे चमकने लगे थे। उनके चौड़े ललाट पर उनके खिचड़ी बाल छितरा गए थे और विकरालता किसी चक्रवात की तरह वहाँ चक्कर काटने लगी थी।

अजीब किस्म की एक घिन मुझे अन्दर ही अन्दर मथने लगी थी। पर मुझे साफ लग रहा था कि इस बार इस घिन का कारण सिर्फ पेशाब की तीखी बदबू नहीं थी, बल्कि परमी मास्टरनी, उसका पति और थाने वालों की मदजी की अदालत में अशरीरी उपस्थिति थी। मुझे ध्यान आया कि डोकरी वाली दुर्घटना से थानेदार की कैसी भली तस्वीर उभर रही थी। लोगों ने उसके लिए कहा कि उसने परमी मास्टरनी को बेटी कहकर पुकारा और सिर पर हाथ फेरकर दोनों पति पत्नि को कचहरी के चक्करों से बरी कर दिया। लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि डोकरी के गले में तोला भर सोने की जंजीर थी वह भी थानेदार ने परमी मास्टरनी को

लौटा दी। आखिर उसे बेटी कहकर उसका धन कैसे रख सकता था।

एक क्षण मुझे लगा कि मदजी की सारी बात उनके घुटने पर गढी हुई है। कहीं ऐसा भी होता है! सोचकर मैंने उनकी तरफ देखा। उनकी आखों मे अब भी खिचाव था और चहरे की विकरालता मे रत्ती-भर कमी नहीं आई थी। उनको झूठा मानने की मेरी मंशा रेत के धारे पर मडे आखरों की मानिंद एक ही झोंके मे मिट गयी।

मैं मदजी के अगले कदम का इन्तजार करने लगा। सोचा, अब वे सदव की तरह पत्थर उठाने को नीचे झुकेंगे और फिर पैर पटकते हुए किसी अचीती दिशा मे बाहर हो जाएँगे।

पर आज ऐसा नहीं हुआ।

मदजी के दांत किटकिटाते सुन पडे और वे इत्ते ही बोले, "उसकी अँतडियाँ अगले पहिए से चिपकी पडी थीं, पर नहीं, इन खानेवालों ने खुद ले जाकर पिछले पहिए को खून से रग डाला और अगला पहिया साफ हो गया साफ।" मदजी की घिग्घी बँध गई जैसे चेहरे पर दु ख, आतक और क्रोध की आडी तिरछी लकीरें दीखने लगी।

मैं उठकर खडा हुआ। पर और करीब जाने की जरूरत नहीं पडी। मदजी का मुह झाग उगलने लगा और वे बेसेत से अपनी खाट की ओर खुद ही लपक पडे।

बाहर शायद तीखी-ठडी हवा की रफ्तार तेज हो रही थी। कहीं पडोस मे कुछ गिरने जैसी आवाज आई। चौंकते ही ठड और एक अजनबी गुस्से से मेरी मुट्ठिया और दांत भिचने लगे।

मदजी अपनी झोलीनुमा खाट मे औधे मुह पडे हुए सिसक रहे थे।

उस रात मैं घर नहीं पहुँचा।

मदजी देर तक खाट मे उल्टे पडे ऐंठते रहे और मैं उनके पास बैठा-बैठा उनकी पीठ सहलाता रहा। कोई दो घटे तो लग ही होंगे, जब जाकर मदजी की देह ढीली पडने लगी।

ये उठ बैठे।

लालटेन में शायद तेल खत्म हो रहा था। कुछ देर भर लालटेन डगमगी सी लगने लगी। जलते हुए उजास में मैंने मदजी की आँखों को सावधान देखा। जैसे धुएँ में तारों के बाद की छायी हुई गर्द हो, वहीं मुझे एक सूनी सूनी छाया मँडराती दिखाई दी।

आखिर लालटेन बुझ गई।

"सज्जन!" अँधेरे में मदजी के बोल थमके, जैसे।

"हाँ, मदजी! क्या हुआ था आपको? अब कुछ आराम है न!"

"हाँ" मदजी ने इतना भर कहा।

मेरे सामने, मेरे आने पर शुरू हुआ मदजी का उत्साह और वह बावरेपन से युक्त व्यवहार फिर प्रकट होने लगा। किसी के अनजाने बात याद आये। परसों मास्टरजी की बात सुनाते-सुनाते ये किस पहिए के शूल जगा कर ले बैठे थे? पर मुझे यह डर सताने लगा कि यह पूछने से मदजी पर फिर से प्रेत की सवारी न हो जाए।

तभी मदजी बोल पड़े, "सज्जन, तेरा सोचना गलत आने है... मैं बावरा नहीं हूँ रे!"

"मैंने आपको कभी बावरा नहीं जाना।"

"मुझे पता है, वीरा! पर अब यह बात बहुत पुरानी हो गई। सब दुनिया मुझे बावरा जानकर ही चलती है। मेरे पास क्या सफाई कि मैं बावरा नहीं!"

"कैसे?" मैंने बेसब्री से पूछा।

"सुनेगा?" मदजी ने अनुमान से हाथ पसारे और मेरे कंधों पर रख कर पूछा, "तुझे देर तो नहीं होगी?"

"देर तो जो होनी थी, हो ली... अब नहीं होगी।"

आसरे में अँधेरा ठसाठस भरा था। उस तीखी बदबू का शायद मेरी नाक अब बर्दाश्त कर चुकी थी। अब इतनी तिलमिलाहट नहीं थी।

मदजी ने मेरे कंधों से हाथ हटाये और बोलने लगे।

"तब हिंदुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा नहीं हुआ था। पश्चिमी बंगाल की सीमा से लगे हुए पाकिस्तान के किसी मुकाम में मेरे बापू का

ठाडा कारबार था। मेरी अवस्था तुम्हारे जित्ती ई, कोई अठारह बीस बरस हागी। उमसे हो पता नही कितना पहले ना यह घर बना हुआ है खैर, हम तीन भाई थे। कारबार मारा हिस्सेदारी मे था। सबसे बडा धधा पाट (जूट) का होना। गददी गोतो के साथ साथ एक विशाल गोदाम था, जहा सैकडो मजदूर पाट की छँटाई, सफाई और गाँठें बाधने का काम दिन-रात करते। उन मजदूरो मे मैं ही था—एक अलगा नाम का मजदूर समझा कि मेरे बावरेपन की कथा इसी नाम से शुरू होती है।" कहकर मदजी थमे।

"कस?" मेरी उत्सुकता परवान चढने नगी।

"सुने जाओ सब कुछ बता दूगा।" मदजी मिठास और धीरज से बोलने लगे "तो गोदाम मे ज्यादातर मजदूर बिहारी थे। अलगा भी इही म से एक था। सब मजदूर सप्ताह के सप्ताह अपनी मजदूरी लेते और अपने खर्चा को छोड पैसे जमा करते। दो तीन महीनो मे ये पैसे डाक से अपने बाल-बच्चो को भेजते। एक दिन शाम के वक्त मुझे अकेला देख-कर अलगा डरे डरे होना मेरे पास आया। कहा, अलगा कैसन खबर है?' मैंने मजाक मे पूछा।

'खबर का बताई बाबू आपस एकठू बात पूछना रहा। वह सरक कर मेरे करीब आया और धीरे-से बोला।

"कहा।" मैंने कहा।

वह देर तक जैसे कहने के लिए बोल घडता रहा और जैसे बहुत कठिनाई से ही बोल सका, 'बाबू, डाक से घर भेजा पइसा कितना देर मे घर पहुँचता जाता है?'

'हमार घर ' कहकर उसने बिहार का एक जिला, गाँव और बाबा आदि सब बता दिये।

"दस प द्रह दिन म और क्या?" मैंने उस उन दिनो की डाक की रफ्तार का अनुमान लगाकर बता दिया।

मरो बात सुनकर वह सुस्त पडने लगा। फिर लाचारी से बोला, "हमरा तो चार महीने स भी नही पहुँचा।'

"नही पहुँचा?" मैं बोला, 'तुमको कमे पता लगा रसीद नही

वे उठ बठे।

लालटेन म शायद तेल खत्म हो रहा था। कुछ देर झप झपाकर उसकी लौ डूबने लगी। जाते हुए उजास म मैंने मदजी की आखो को झाक्कर देखा। जैसे अंधड के जाने के बाद की छायी हुई गर्द हो, वहाँ मुझे एक सूनी सूनी छाया मंडराती दिखाई दी।

आखिर लालटेन बुझ गई।

'सज्जन!" अँधेरे म मदजी के बोल चमके, जैसे।

"हाँ, मदजी क्या हुआ आपको? अब कुछ आराम है न!"

"हाँ' मदजी ने इतना भर कहा।

मेरे सामने, मेरे आने पर शुरू हुआ मदजी का उत्साह और वह बावरेपन से मुक्त व्यवहार फिर प्रकट होने लगा। किस्से के अन्त के बोल याद आय। परमी मास्टरनी की बात सुनाते सुनाते वे किस पहिए के खून लगने की ले बठे थे? पर मुझे यह डर सताने लगा कि यह पूछते ही मदजी पर फिर से प्रेत की सवारी न हो जाए!

तभी मदजी बोल पडे, "सज्जन तेरा सोचना सालह आने है मैं बावरा नही हूँ रे!'

'मैंने आपको कभी बावरा नही जाना।'

'मुझे पता है, बीरा! परअब यह बात बहुत पुरानी हो गई। समूची दुनिया मुझे बावरा जानकर ही चलती है मेरे पास क्या सफाई कि मैं बावरा नही!"

"कसे?' मैंने बेसब्री से पूछा।

"सुनेगा?" मदजी ने अनुमान से हाथ पसारे और मेरे कधो पर रख कर पूछा, 'तुझे देर तो नही होगी?"

'दर ता जो होनी थी, हो ली अब नही होगी।"

शासरे म अँधेरा ठमाठम भरा था। उस तीखी बदबू को शायद मेरी नाक अब बर्दाश्त कर चुकी थी। अब इतनी तिलमिलाहट नही थी।

मदजी ने मेरे कधा से हाथ हटाये और बोलने लगे।

"तब हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा नही हुआ था। पश्चिमी बँगाल की सीमा स लगे हुए पाकिस्तान के किसी मुकाम म मेरे बापू का

ठाडा कारबार था। मेरी अवस्था तुम्हारे जित्ती ई, कोई अठारह बीस बरस होगी। उनसे ही पता नही कितना पहले ना यह घर बना हुआ है खैर, हम तीन भाई थे। कारबार सारा हिस्सेदारी मे था। सबसे बडा धंधा पाट (जूट) का होता। गददी गोलो के साथ साथ एक विशाल गोदाम था, जहाँ सैकडा मजदूर पाट की छँटाई, सफाई और गाठें बाँधने का काम दिन रात करते। उन मजदूरो म मैं हो था—एक अलगा नाम का मजदूर समझो कि मेरे बावरेपन की कथा इसी नाम से शुरू होती है ।" कहकर मदजी थमे।

"कसे?" मेरी उत्सुकता परवान चढने लगी।

"सुन जाओ सब कुछ बता दूगा।" मदजी मिठास और धीरज से बोलने लगे "तो गोदाम मे ज्यादातर मजदूर बिहारी थे। अलगा भी इही म से एक था। सब मजदूर सप्ताह दे सप्ताह अपनी मजदूरी लेते और अपने खर्चों का छोड पैसे जमा करते। दो तीन महीनो मे ये पैसे डाक से अपने बाल-बच्चो को भेजते। एक दिन शाम के वक्त मुझे अकेला देख कर अलगा डरू डरू होता मेरे पास आया। 'कहा, अलगा कसन खबर है?' मैंने मजाक म पूछा।

'खबर का बताई बाबू आपस एकठू बात पूछना रहा।' वह सरक कर मेरे करीब आया और धीरे से बाला।

"कहा।" मन कहा।

यह देर तक जैसे कहने के लिए बोल घडता रहा और जसे बहुत कठिनाई मे ही ोल सका, 'बाबू, डाक से घर भेजा पइसा कितना देर मे घर पहुँचता जाता है?'

'हमार घर ' कहकर उसन बिहार का एक जिला, गाँव और थाना आदि सब बता दिये।

"दस प द्रह दिन म और क्या?" मैंन उसे उन दिनो की डाक की रफ्तार का अनुमान लगाकर बता दिया।

मरी बात सुनकर वह सुस्त पडने लगा। फिर लाचारी से बोला, 'हमरा तो चार महीने से भी नही पहुँचा।'

"नही पहुँचा?" मैं बोला, 'तुमका कसे पता लगा रसीद नही

आया ?'

'रसीद के तो कुनो बात नहीं, हमरे गाव से लोग आए हैं, वही कहिन हमको।' उसने कहा।

'किसके हाथ से भिजवाया ?' वह कई बार मुझसे भी भिजवाता था, इसलिए मैंने पूछा।

उसकी लाचारगी गहराने लगी। जसे होठा पर किसी ने सिला रख दी हो, होठ हिला हिलाकर रह गया। मेरे दिमाग मे एक नाम खुद चला आया। मैंने पूछा, 'छाटू बावू से ?'

'जी।' उसने डरे सहमे हामल भरी।

मुझसे छोटे वाले भाई को सब 'छोटा बाबू' कहते। धुधली धुधली एक कल्पना मैं करने लगा। छोटा बेजा खर्चीला और अभी से एय्याशी के रास्ते चलने वाला हो गया था। पर पसे पूरे कहां से ? मेरे बापू जी से एक आना भर चमडी उतरवानी आसान, बजाय एक आना नगद ल सकन के।

मैंने अलगे को तसल्ली दी और भेज दिया। पर इसकी तकलीफ मेरे कहीं गहरे मे उतरकर रह गई। एक ता इन मजदूरो को यूं ही कम मजदूरी मिलती और फिर वे पेट काट काटकर अपने बाल बच्चो का पट भरने यह पैसा भेजते। जबकि हमारे यहां अलग की सप्ताह भर की मजदूरी जित्ते पैसो के तो पान तांबूल ही आ जात।"

लगा, मदजी ने खाट पर अपने को हरक्त दी है। पुरानी ईमें चर चू करती चीख पडी जैसे। मैं उनकी ओर बोलने का दिलचस्पी से इतजार करने लगा।

"यह पहला अन्याय था, जो सीधा मरे सामने आ खडा हुआ और मैं भी इसके सामने डटकर खडा हो गया। मदजी ने जैसे विश्राम करना ठीक समझा हो, कुछ देर थमकर फिर अपनी लीक पर चले आए, "छोट को बहुत बुरा लगा, पर आखिरकार मैंने उससे 'हां' करवा ली। अलग के पैसे गददी से लेकर भिजवा दिए और मैं यहां, कुछ दिन के लिए देश चला आया। यहां इन्ही दिनो मेरा ब्याह हुआ।

'ब्याह के बाद मैं फिर गया, तो अलगा मिला, 'बाबू, अब हम सब

झमेला ही मिटा दिए हैं जनाना को यही ले आये हैं।" मैंने कुछ नहीं पूछा, तो भी यह बताना गया, "और तो कोई रहे नहीं एक हमरा जनाना ई रहा, सो हम उसको यहीन ले आये। ओकरू कोठरी ले लिए हैं, वहीं वासा कर लिये हैं।"

"मैंने सुनकर सोचा कि अच्छा ही हुआ और इस अच्छे का चलत शायद एक बरस तो बीत ही गया होगा कि एक दिन किसी से सुना, बलगे ने अपनी जनाना को लात मारकर घर से निकाल दिया है और खुद बावरा सा मारा-मारा फिरता है। मेरे कुछ समझ में नहीं आया। फिर मैंने देखा, यह उसकी अपनी घरेलू बात है और वह हमारा मजदूर नौकर है, कहीं फालतू पचायती न मानी जाए सो मैं बीच में ही नहीं पड़ा।"

मदजी सयत किस्सा गो की तरह बोल रहे थे। मैं अचभित हुआ अधेरे मैं उनकी आवाज की दिशा मे ताक रहा था कि क्या ये वही मदनी हैं, जिनको गाँव के छोरे छोकरे कुत्ता खीचकर चिढा देते हैं?

"पर बात यही खत्म नहीं हुई, वीरा आदमी का खून पीने की हमारे घर की पीढियो पुरानी रीत थी। मरी समझ म आ गया कि हमारे जमे दूसरो की मेहनत से अपनी तिजोरियाँ भरने के धधे म लगे हुए सब परदेश कमानेवालो की यही रीत है।

"एक ऐसे ही घर मे जनमकर मैं इन खून पसीना एक करनवालो की दुनिया मे कसे आ गया, यह अचभे की बात है। मैं शुरू से ही गोदाम का काम देखने लगा था। पता नहीं क्या, छुटपन से ही इन मजदूरो के बीच मेरा मन ज्यादा रमता था।

"य मजदूर गोदाम मे चौफेर पसरी पाट (जूट) के बीच, उसकी सीलन से उठती बदबू और उमस की परवाह किय बिना, देह पर पाट के फफू चिपकाये अपने पट का खड्डा भरन का लगे रहत। तब भी इस खड्ड मे क्या डाल पाते! एक मुट्ठी भर मोटा चावल और च्यूटी भर नमक ।

"मुझे उनका काम करते, मजाक करते या गोदाम मे ही इन्ट के चूल्हे पर अपन मोटे चावल सिकोते देखकर एक अजीब सुख मिलता। बापू-

जी छठे ऽमाम गोदाम का चक्कर लगाते, वरना इन मजदूरा की साफकर छाटी ताडी और गांठा म बँधी पाट के गद्दी पर बैठे बठे घाटे मुनाफे व सौदे करन। मध्याह्न के एक दिन तन-दड लगाकर वही बैठे-बैठे इन मज दूरो की मजदूरी फेंक दते। मेरे बालक मन म यह सवाल जान अनजाने उठता ही रहता कि किस दम से हमारी देश परदेश की हवलियाँ, खेत जमीन और ठाठ बाठ हैं वे कब तक इस माटे चावल के साथ नमक फांक फांककर पट भरेंगे? खैर, यह तो पता नहीं कितना पुराना डर्रा था यह, पर अलग के साथ जा हुई उसन मुझे झकझोर के रख दिया है ।"

मदनी जसे परतें उधेड रहे थे। मुझे एक एक परत के लिए बेसब्रा बढती जा रही थी। इस बार मदजी कुछ ज्यादा लम्बी चुप्पी लगा गए, तो मैंने कुरेदा, "अलग के साथ आखिर ऐसा क्या हो गया था?"

"बताता हूँ, बीरा बताता हूँ न!" एक रात को मैं गोदाम से दिन भर का कामकाज दज करने क बाद गद्दी जा रहा था कि अलगा मुझ मिला। उसके मुह से ताडी का भभका आ रहा था। ताडी सभी मजदूर पीते थे, पर ऊन फेल कभी नहीं होते थे। पर अलगे का आज का ढग कुछ अलग था। वह अपनी अक्ल से तो शायद मेरी तरफ ही आ रहा था, पर उसके पैर उसके नियत्रण मे नहीं थे।

'पिछले कई दिना से वह गोदाम भी नहीं आ रहा था। पर उसके साथी मजदूरा न भी कोई साफ कारण इसका मुझे नहीं बताया था। सिवाय इसके कि अलग ने अपनी घरवाली का मारा पीटा और घर से निकाल दिया। दरअसल मजदूर अपने हालात के बोझ से ऐसे दबे हुए थ कि जिसके पास पैसा होता, उसे भगवान ही समझते थे। उनके मन म यह बात पता नहीं कित्ते अर्से से बैठी हुई थी कि यह सेठ बाबू लोग भगवान समान ही हैं जो उनका पट भरते हैं इसके चलते वे इन बाबुओ के साथ बहुत सम्मान और हीनता दिखाते हुए पेश आते। अपने हाथा स जो लाखमोली मेहनत व करते, उसका मोल तो पहले ही हमारी तिजोरिया म बद रहता, पर इसके साथ साथ उनकी आत्मा भी गिरफ्तार रहती।

"ता अनगे के दुखकी सच्ची बात, इसी आत्महीनता के कारण मुझसे छिपाइ गई। और यही अनगा, ताडी के नशे के कारण थोडा आजाद होकर मुझसे टकरा गया

'ऐ बाबू राम राम !' उसके बोल हिचकियों म अटक अटककर आ रहे थे।

"मैंने राम रामी का जवाब दिया और उसे गौर से देखने लगा। मुझ गुरु से ही अनगा सबसे जुदा और कुछ ज्यादा प्रिय लगता था। वह कुछ देर नशे के कारण लडखडाता रहा फिर बोला

'ठीक नही रहा, बाबू ठीक ।'

'मैं कुछ समझ नहीं पाया। थोडा डपटकर मैंने पूछा, 'ए अनगा, क्या ठीक नही रहा रे ! ताडी केसी पिया है क्या ?'

'अरे नहीं बाबू ई स्साला ताडी से क्या ठीक तो वह नही जन सुमरा बडा भाई किया हमर साथ ।'

'अनगा !' मैं इस बार जोर से गरज पडा, 'जरा देखकर बोलो तो, क्या हुआ ?'

'हुआ क्या, बूजना है ? उसकी आवाज म ताडी के साथ साथ रीस की बहक भी शामिल हो गई, 'हमरा जनाना का खराब करता है स्साला और क्या ? हम उसी क वास्ते तो लाया रहा न ! ई बाबू लोग अपना जोरू जनाना को बडका दो तल्ला से नीचे ई झाँकन नही देता और गरीब आदमी का जनाना पत्तल का माफिक समझता है चाट लिया या फेंक दिया ?'

'अनगा ? होश तो है न !' मैंने इधर-उधर देखा, कहीं कोई सुननेवाला तो नहीं है कहीं ! उस मुकाम ही नहीं, बल्कि आस पास के मुकामो तक पसरा इन 'बाबू लोगन' का एक 'समाज' था। मैं उसी समाज मे अपने बडे भाई की, जिसका बखान अनगा कर रहा था, इज्जत की फिक्र करने लगा।

'बहुत होश आ गया, बाबू !' अनगा फिर बोला, 'लेकिन ई होश साला आया देर से तुम हमरा पैसा मारा, सहन किया लेकिन अब हमरा जनाना का मारो, नही सहन करेंगे।' कहकर अनगा खासे ताव

मे आ गया और गर्दन ऊँची कर ली, पर तभी उसके पैर जवाब दे गये। वह बेतरह लड़खड़ाया और धराशायी हो गया।

तब तक दो दूसरे मजदूर आ गए। मैंने उन्हें अलगे को ले जाकर गोदाम में सुलाने का जिम्मा सौंपा और यहीं चला आया। यहाँ आकर देखा कि मेरा वही बड़ा भाई सोने से पहले नित-नेम से करनेवाली अपनी प्रार्थना कर रहा है, जिसको लेकर अलगा अभी सब कुछ कह रहा था। मुझे रीस तो ऐसी उठी कि पसेरी उठाकर उसका सिर तोड़ दूँ पर सोचकर रह गया कि अलगा झूठा न हो। वह नशे में था कहीं उसे वहम ही हो गया हो! पर मैंने निश्चय कर लिया कि इस बात की खोज खबर जरूर करके रहूँगा।"

और मदजी फिर विश्राम लेने लगे।

"नींद तो नहीं आती, सज्जन?" इस बार मदजी कुछ देर बाद खु' बखुद पूछ बैठे।

"ऊँ हूँ नींद कहाँ?' मैंने उत्तर देकर कहा, "मैं तो पूरे रस से सुन रहा हूँ आपको सुनता हो या नहीं, मैं बराबर 'हुँकारा' भी तो देता हूँ।"

"देता होगा पर बीरा, तेरे यह धड़का तो होगा कि कहाँ यह आसरा ऊपर न आ पड़े ।"

"यह धड़का तो कभी का मिट गया।"

"तो फिर सुने जा " मदजी बोले

"दूसरे दिन मैं गोदाम गया और वहाँ से एक मजदूर चुन लिया। काम का बहाना देकर उसे साथ ले लिया। बाजार के पीछे कुछ दूर हट कर एक नदी थी। उसके बाँध पर सड़क बनी हुई थी, जो सुबह शाम बाबू लोगों के टहलने के काम आती। दिन में बाँध की सड़क प्राय सूनी रहती। मैं इस मजदूर को लेकर इसी पर निकल पड़ा।

"कुछ देर तो वह जानते बूझते भोला बनता रहा, फिर सब कुछ बता दिया। उसने ही बताया कि अलगे की घरवाली बहुत सुरूप और उमर में जवान है। अलगे और उसकी उमर में बहुत फर्क है। वजह यह कि अलगे के घर की तरफ यह रीत है कि मर्द के पास जब-तक अपनी जमीन नहीं हो,

कोई औरत उससे ब्याह नहीं करती। अलगे के माँ-बाप उसे छोटा छोड़कर ही भूख से मर गये थे। उमर का बड़ा हिस्सा मजूरी करके उसने गाँव में थोड़ी-सी जमीन ली, तब जाकर उसका ब्याह हो सका। ब्याह के बाद अलग की घरवाली की कोख से एक बच्चा भी जन्मा था। पर अलगा उसे देखने अपने देश लौटनेवाला था कि उसकी मौत की खबर भी आ गई।

"अलगा ज्यादातर तो मजदूरी के पीछे अपनी घरवाली से इतो दूर ही रहा। इस बार जैसे-तैसे करके वह उसे यहाँ ले आया था और एक कोठरी भाड़े लेकर बासा-बाड़ी कर लिया था।

"अलगे की सारी हकीकत बताकर उसने यह बताया कि अलगे की सुन्दर घरवाली उसके लिए कभी-कभी 'भात' पहुँचाने गोदाम आती थी। वहीं उसे मेरे बड़े भाई ने देख लिया होगा। उसने अलगे की घरवाली का हुलिया बनाया, तो कसे-कसे बदन की एक साँवली-सी औरत मेरे आगे-आगे घूमने लगी। शायद गोदाम में ही कभी मैंने भी उसे देखा होगा।

"खैर, हुआ यह कि अलगे की घरवाली का गठा हुआ बदन मेरे बड़े भाई को अपनी नरम नरम, हाथ लगने से मैली होने जैसी पीले रंग की बहुआइन से ज्यादा मन माफिक आ गया होगा। उसका असर यह हुआ कि वे अलगे पर बेजरूरत मेहरबान हो गए और गोदाम के उनके चक्कर बढ़ गये। अलगे को बक्त बेवक्त इनाम इकराम भी देने लगे। भोला-भाला अलगा इस इनाम से मदमस्त होकर रह गया। दूसरी तरफ, एक मुँह लगे मजदूर के माफत अलगे की घरवाली तक अपनी इच्छा भी पहुँचा दी। एक बाबू का ऐसा प्रस्ताव पता नहीं कोई लड़ाई उसके जी में छिड़ी कि नहीं, पर अभाव में बढ़ी उसकी जवानी लोक-लाज और धम-मरजाद को लाँघकर 'बहुआइन' होने के बहकावे में आ गई तो कौन बड़ी बात।

"कुछ दो चार और मजदूरों के भी वहाँ बासा-बाड़ी थे। उनमें तो वह पर लगाकर ऊँची हो ही गई। गोदाम में आठ दस मजदूर रहते खाते-सोते भी थे उनको कई इल्जाम लगाकर बड़े भाई ने दूसरे ठिकाने के लिए मजबूर कर डाला। और गोदाम में ही पता नहीं कब, कैसे किस-किसकी आँखों में धूल झोंककर, पाट (जूट) की गाँठों की ओट में, अलगे

की घरवाली से अपनी साध पूरते रहे।

"और अचानक ही किसी मजदूर ने देख लिया, और चुपचाप चला गया। उससे अलगे को पता लगा, तो उसने घरवाली को मार पीटकर घर से निकाल दिया। पर अपने भगवान जैसे बाबू लोगों पर वह यह सही इलजाम भी लगाते हुए झिझक रहा था। ना ही कोई दूसरा मजदूर इसका जिक्र कर बाबुओं को नाराज करना चाहता था।

"दूसरी गोदामों के मजदूरों को भी पता लगा होगा। पर उनके बाबू लोग भी उसी समाज के थे। इन बाबू लोगों के दबदबे के चलते वे भी खुलकर नहीं बोल सकते।

"उसने यह भी बताया कि अलगे की घरवाली कुछ दिन इधर उधर भटकती फिरी फिर यहीं के एक मुसलमान के घर में रहने लगी। आखिर अलगे के सब्र का बाँध टूट गया और ताड़ी के जोर से उसने सब कुछ मेरे आगे उगल दिया। बात सोलह आने खरी है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं रहा। क्योंकि मेरे इस बड़े भाई की लाग पहले से ही ढीली रही हुई है, यह मैं जानता था। एक बार उनकी फजीहत उनका यह बाबू लोगों का समाज ही करने पर उतर आया था, क्योंकि एक बंबुपाइन से चक्कर था, तब बापूजी ने ही बात सभाली थी।"

'फिर ?" मदजी की चुप्पी मुझे बेतरह अखरने लगी और मैं उतावला सा बोला।

"फिर मैंने अलगे के लिए न्याय की माँग की। अपने बापूजी से मैंने कहा कि इस सारी लीला का हर्जाना अलगे को देना पड़ेगा। मेरे भोलेपन पर वे हँसे 'हर्जाना ? कौन सा हर्जाना ?'

"अलगा !' मैंने कहा।

"उसके साथ बुरी हुई है, यह तो समझ में आता है पर ऐसा क्या तो अलगा हुआ और क्या उसकी घरवाली जिसका हर्जाना भरना पड़े ?" बापूजी मसखरी करते से बोले।

"वो थोड़े ही कहता है हर्जाने का। यह तो मैं कह रहा हूँ हमें उसको हर्जाना देना चाहिए उसकी घरवाली उसकी नहीं रही, दुख के कारण वह मजदूरी नहीं करता और मारा मारा फिरता है कसूर किसका है ?

कसूर है आपके सपूत का ।" मैंने उनको समझाना चाहा ।

"बापूजी कुछ देर अपनी आदत मुताबिक मुंह चलाते रहे, जस बात उनके मुंह म हो और वे उसका जायका ले रहे हों । और फिर बोले 'वो तेरा बडा भाई है । खबरदार, जो उसके खिलाफत म किसी का पक्ष लिया तो । हां, तो बुरी को बुरी कहूंगे उसको बरज दूंगा मैं पर आखी उमर अपने 'मन' से पलने वाले को हजाना देना पडे, तो फिर तो खा लिया कमाकर ।'

"बापूजी के बोल विष बुझे तीर से गडे मुझे । अपना बेटा इस बदी के साथ भी अनमाल और वह रत समान सिर्फ इसलिए कि वह उनके परा तले आया हुआ है । मुझे अपने और अपने बापूजी के बीच म एक चौडी खाई इसी पल साफ दीखन लगी ।

'फिर भी मैंने पीछा नही छाडा उनका । बाला, "फिर तीन बरस पहले हजार रुपये की थैली के बदले इसी भाई की इज्जत साबुत बचाकर क्या लाए ?"

'वो इज्जत अगर जाती तो समाज मे जाती अपने समाज म । बापूजी ने आंखें तरेरी, "वो मेरा बेटा है, मैं जीते जी उसकी अपने समाज म हेटी कैसे होने देता ?'

'और यह समाज मे नहा है, क्या ? सब मजदूरो को पता है । वो बोलत नहा तभी तक ठीक है । बोलन लगे तो ?'

'समाज समाज मे यही तो फर्क होता है,' वे मुझे समझाने पर उतर आए जैसे, ये कह भी देंगे तो इनके आपस के सिवाय गौर कौन करेगा ? कौन मानेगा कि एक बाबू एक गंदी सी मजदूरनी क लिए अपना चरित्तर खराब करे कौन मानेगा कि अलग की घरवाली ऐसी अप्सरा है, जिस पर कोई बाबू न्यौछावर हो सके ?'

'मैंने देख लिया कि इन तिलों म तेल नही । पर आखिरी हथियार चलाने से नही चूका, 'अगर सब मजदूर एकठ हो जाएँ तो ?'

'हा भले ही ।' बापूजी निश्चिततापूर्वक बोले, "पहले भी कभी हुए हैं क्या ? रोज रात का टके टके की दारू पीकर कौन लडेगा ?'

'इस बार मैं निरुत्तर होकर रह गया ।'

'वे फिर समझाने लगे, 'तुम्हें अभी बहुत वक्त लगेगा—उष्णा आतप और वनास्पति चावला की किस्मा मे फर्क कैसे रखें, ये बात सीखने की है, यही सीख। ये हक कानून की बातें कहाँ से सीख लीं ?'

भाई को इसका फल भुगतना पड़ेगा।' उनकी सीखों से तंग आकर मैंने कह ही दिया।

"और उनका रहा-सहा धीरज भी उनसे छूट गया। शायद मेरी आवाज की दृढ़ता से वे खीझ गये थे। एकदम बाँस फटा हो जैसे, 'सुन ले कान खोलकर, वह तेरा सगा माँ पट भाई है। तेरा धर्म है कि तू उसकी इज्जत को बचाए। उल्टे तू कुछ अवळी चाल चलेगा, तो उसको नुकसान हो न हो, तेरा नुकसान जरूर कर दूंगा, मैं।'

"मैंने पलटकर बापूजी का चेहरा देखा। मैं उनका संकेत साफ समझ गया था। वे मुझे इस कारबार, जमीन जायदाद और पैसे टके की हिस्सेदारी से परे रख देने की धमकी दे रहे थे। इस बहस को टालकर मैंने एक बार फिर भनगे की वकालत की, 'देखो, उस आदमी को अपनी वजह से कितना संताप हुआ है! इस संताप की कोई कीमत नहीं दी जा सकती, पर न्याय यही है कि हम उसको हर्जाना देवें और उसका घर बसाने के लिए कुछ करें आखिर वरमा से उसका हमारा संबंध है।'

संबंध ?' बापूजी भरमे, अरे निकम्मे! उसका अपना संबंध! जा तू ही कर उसके साथ संबंध। गोदाम में सौ सौ मजदूरों पर अभी हुक्म चलाया है न! एक दिन सुआ हाथ में लेकर गाँठें सी-कर देख—पाँच तरह की तरकारी के साथ खाया है न! नमक को दाल की जगह फाँककर देख एक बार। तेरा डौल ऐसा ही लगता है। तू ये ही करेगा। जा, मर जा मेरे मुँह आगे से हट जा!' ,

मैं विश्राम लेने को थमे मदजी के बोलने की बाल जोहता बैठा था। पर इस वार देर तक अंधेरे के साथ साथ सन्नाटा भी हम दोनों के बीच बैठा रहा।

खुले दरवाजे में से, शुक्ल पक्ष की किसी पिछली तिथि के देर से उगनेवाले चंद्रमा का उजास, छिटकने लगा था। देर से अँधेरा पचा चुकी आँखें इस थोड़े उजास से ही सब कुछ देखने को सक्षम हो गई।

ठड इस रात के साथ साथ गहराती गई होगी, ऐसा ही लगा जब रात की गहराई से निकलकर पेशाब करने उठा।

'सज्जन!" मेरी हलचल सूंघ कर मदजी चौंके।

"नहीं, जा नहीं रहा हूँ थोड़ा फारिग होकर आ रहा हूँ।' मैंने मदजी को आश्वस्त किया।

बाहर कोने वाने पर चादनी छिटकी पड़ी थी। मलबे के ढेर, अधढही दीवारें और पैरों में उलझनी उगी हुई अलसेट सब कुछ चादनी की चासनी से तर बतर! रतजगे के कारण साधारणत होनेवाली थकान की ठौर एक अनचीन्हा उत्साह समा गया मुझमे जैसे किसी छिपे हुए खजाने तक पहुँचने में अब थोड़ा ही फासला बच रहा हो!

मैं लौटकर खाट पर फिर बैठा, तो उसकी ईसें नाराजगी सी प्रकट करती चर चू बज उठी। मैं इससे बेपरवाह होकर बैठा और सोचा, चाहे जो हो यह मदजी का ढमढेर है बहुत गरम। ऐसे जैसे गहरी खुदी हुई कोई धूरी! बाहर की ठंडी डाफर ने मेरे दांत बजा डाले थे। यहाँ पहुँचते ही कलेजे तक गरमाहट पहुँचने लगी।

अँधेरे में फक्त काली छाया सरीखे दीखते मदजी की ओर मैंने अनुमान से ही देखा। कुछ थमकर मैंने कहा, "मदजी रात थोड़ी ही बची है, भोर होने होने को है बात जल्दी-जल्दी पूरी करो!"

"बताऊँ, बीरा बताऊँ।" मदजी बोले, तो ऐसे जैसे हिवलास (स्नेह) की बाढ़ में बहकर और टटोलकर मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे।

"तो कहाँ तक पहुँचे?" कुछ देर बाद मदजी ने पूछा और मेरे उत्तर का इंतजार किए बिना खुद-ब-खुद शुरू हो गये, 'हाँ, मैंने अपने बापूजी से कह दिया कि हर्जाना भरना पड़ेगा और भाई को मजदूर समाज के आगे माफी माँगनी पड़ेगी। इस पर वह मुझे उल्टा ज्ञान देने लगे। कहा कि तू उससे छोटा है और लक्ष्मण और भरत जैसा भाई बनना अपने धरम को ज्ञान है। भगवान ने तुझे मौका देकर तेरी परीक्षा ली है आदि आदि।

"बापूजी ने हर तरह का दबाव डालकर देख लिया, पर मैं नहीं माना।

मैंने कह दिया कि वर्ना मैं मजदूरों के साथ मिलकर उनकी फजीहत कराऊँगा। सब यहीं गोदामों में इज्जत खराब होगी। आखिर वे तंग आकर बोले, 'वाह तो, तेरी इत्ती ही जिद है, तो पांच रुपये दे दे और धर्मादे में माड दे।'

'मेरे तो जैसे कान पुसकर हाथ में आ गए! अलगे के इत्ते बड़े दुख की यह कीमत लगाई बापूजी ने! फिर मैं वहां नहीं ठहरा। वहां से आ तो गया, पर सोचने लगा कि यह चुनौती पूरी कैसे करूंगा? कहने को तो एक हमारे गोदाम में ही कोई सौ मजदूर काम करते थे और सब गोदामों के मिलने पर हजार से भी ऊपर हो जाते, पर तब भी आसान नहीं थी यह बात।

"तीन-चार दिन बराबर मैं मजदूरों से मिला। उनके जहन में तो बस पाट, इस पाट के साथ दिन भर की गधा खटनी और साँझ पड़े एक एक गुटका ताड़ी को छोड़ कोई बात बैठना ही नहीं थी। बाबू लोगों की महिमा में कैद उनकी आत्माएँ लड़ाकू थीं तो बस अपने आपसी मोर्चों पर इस मोर्चे पर एकजुट होने की कल्पना तक से वे अलग रहे हुए थे। बिहार के अलग-अलग जिलों के अलग अलग दल—मैं समझा समझा कर थक गया सोचा कि सैकड़ा सालों से इन्हें बाबू लोगों की महिमा और भाग दुर्भाग्य की अफीम पिलाई हुई है। इनकी नाड़ियां दिनोदिन शिथिल होती गई हैं दुनिया में कहीं कुछ हो, इन्हें कोई खबर नहीं। ये अपने हजारों हाथों से जो मेहनत करते हैं उसका फल कलकत्ता की जूट मिलों के मालिक पाट का सामान विदेशों में बेचकर चलते हैं। बीच में ये बाबू लोग भी कार बार के नाम पर आधा पूरा झटक लेते हैं घुटना-घुटनों पानी में पाट धानेवालों को इसकी कीमत मुट्ठी भर चावल से ज्यादा नहीं मालूम और न ही मिलती है उन्हें।

'अलगे ने दो तीन बार ताड़ी चढ़ाकर शोर शराबा मचाया, पर ज्यादा हिम्मत उसकी भी नहीं हुई। पर एक दिन उसने मेरे वक्त-बेवक्त उसके मुंह पर अचानक एक नाम आया—धाड़ धाड़! वह बोला 'धाड़ धाड़ होने रहित तो हम दिखाना कि कैसा अजान निरखता गरीब का घर में डाकायती करने का!'

"मैंने धाड शाह की खोज खबर की। सुना कि वह एक बिहारी है जिसके आसाम के जगलों में लकडी के बडे बडे ठेके हैं। यह भी पता लगा कि वह एक नम्बर का गुंडा भी प्रसिद्ध है। जलग के हिसाब से यह धाड शाह उसी के जिले का था और वही उसे न्याय दिलवा सकता था। आखिर मैंने इस धाड शाह का पता ठिकाना निकाल लिया। सोचा कि धाड शाह की शाख्सियत इन्हें अपने जातीय अस्तित्व का बोध करवा सकती है। वह एक बार आजाए, तो अपनी जमीन के इन पिसते मरसभाइयों को ललकार-कर खडा कर सकता है। बस, मुझे और कुछ नहीं सूझा। डूबते को तिनका भी पकडना पडता है न।

"एक दिन चुपचाप मैं धाड शाह के ठिकाने पर पहुँचने को निकल गया। पहुँचकर देखा कि धाड शाह वाकई धाड शाह था। हाथी जैसा शरीर और छोटी छोटी चिरमी सरीखी आखें। कद थोडा ठिगना पर गला बुलद, जैसे बात नहीं चिंघाड रहा हो। अपने द्वारे बधे बीसेक हाथियों की छाया उस पर भरपूर पडी थी शायद लकडी के लट्ठे इधर उधर पटकने के लिए उसने ये हाथी पाल रखे थे। मैंने पहली बार उस जमाने के आसाम में किसी बिहारी को इतना धन बल से तगडा देखा। मैंने सारी बात कुछ ऐसे बताई कि धाड शाह का अहंकार, जो पहले से ही पहाड सरीखा था, और फन फूल जाए। मेरे बताने से असर ठीक पडा और सुनते-सुनते वह बोला ससाला लोग को देख लेगा

"धाड शाह मेरे साथ ही चला आया। पहुँचने के तीन दिन बाद उसने मेरे बडे भाई को वह प्रताडना दी कि उसकी गुडागर्दी से सबकी हवा सरक गई। अपनी ठेठ जुबान में उसने पता नहीं क्या मतर फूंका कि मैं देखता रहा और सारे मजदूर एकठ हो गये।

"धाड शाह जो बोलता, बस फरमान ही होता। उसके फरमान मुताबिक एक मजदूर दौडा और घूरे पर लिटते किसी गधे के गले में रस्सी डालकर हाक लाया। इस गधे और सारे मजदूरों समेत धाड शाह हमारी गद्दी पहुँचा।"

"उसके डरावने चेहरे पर क्रूरता विकराल दीखने लगी और पहले से किया हुआ निर्णय प्रकट हो गया, जब उसने गद्दी में घुसते हुए थोडा सा

पीछे घूमकर पूछा, 'ई दोना मे से कौन था ?'

'गद्दी पर बापूजी और मेरा बडा भाई दोना बठे थे। शायद अलगा घाड शाह के आस पास ही था। वह लपककर आगे आया और उमने भाई की तरफ इशारा किया। फिर एक क्षणभर लगा होगा, घाड शाह अपने छोटे छोटे पैरो को मोडकर गद्दी पर पसरा और भाई का गला अपन पज म बटोरकर उसे नीचे खीच लिया। बापूजी इस अचीती हालत से सहम कर पीछे सरके। घाड शाह ने अगला कदम उठाया। भाई को उमने पीछे से ऐसी ठोकर मारी कि वह सीधा गद्दी से बाहर पहुच गया।

"बाहर मजदूरो का रेला सा था। कुछ लोग तमाशाई भी बन चुके थे। इतने म मैंने सुना कि बापूजी ने बेतरह शोर मचा डाला, अरे! रामधन कहाँ मरा रे, जल्दी बदूक लाओ। मुझे तो पता ही था कि वह हिफाजत के लिए चार लठैत और एक बदूक का बडा भरोसा रखते हैं।

"बापूजी के चीखने पर घाड शाह निभय पीछे मुडा और चिघाडता सा बोला, "स्साला, कितना गोली होगा तुमरे पास? बाहिर देख, इतना आदमी को मारने मे सकेगा? चूपचाप बईठ जा, नहीं तो खीच लेंगे तुमको भी बाहिर, समझा!"

"और फिर भाई को जबरदस्ती उस गधे पर उल्टा मुह करके बिठा दिया गया। एक मजदूर कहीं से कनस्तर उठा लाया और गधे-सवार भाई के आगे आगे उसे पीटते हुए चलने लगा। यह सवारी एक एक घर और एक एक गद्दी के सामने से गुजरी पीछे मजदूरो की फौज, बीच मे गधे सवार मेरा भाई और आगे-आगे लुढकता सा चलता दुस्साहसी घाड-शाह!"

मदजी जसे विश्राम स्थल पहचानते हो, यहाँ तक बोलकर चुप रह गए। बाहर से माइक पर शुरू होते भजन कीतन के बीच-बीच म कहीं गहरे से मुगा बोलने की आवाज भी आने लगी। भोर अपनी पदचापो म कुकुम बिखेरती पास-ही पास आ रही थी। पर मेरे कानो की बेसब्री मदजी के बाल फूटने को लेकर ज्यो की-त्यो बनी हुई थी।

वे फिर शुरू हुए, "बस, घाड शाह की इस भगवान सरीखे बाबुओ

की यह गत बनाने से दबे-कुचले मजदूरों के हौसले खुल गए। वे बाबुओं की महिमा की मेंढ से एकबारगी आजाद हो गए जैसे। उन्हें देखकर एक बार तो लगा कि वे सब कुछ बदलकर ही छोड़ेंगे। खैर, इस सारे ताण्डव का मुखिया तो था धाड़ू शाह, पर बाबू समाज की आँख में खटका तो सिर्फ मैं। धाड़ू शाह आया और चला गया। अलगे की घरवाली को उसने फिर अलगे के घर में पहुँचा दिया।"

अचानक मदजी ने एक गहरी साँस ली। अँधेरे में उनके फेफड़ों में घुसती साँस की सीटी-सी सुनाई पड़ी।

"यह तो सब अच्छा ही हुआ, इससे आपके साथ क्या बुरा हुआ?" मैंने मदजी को इस बार असमय विश्राम लेते पाकर पूछा।

"वही तो असल कहानी है बीरा!" मदजी ने इस बार साँस खींचकर हाथोंहाथ छोड़ी और बोले, "मैं मजदूरों के उस हौसले को सुकारथ करना चाहता था। मैंने सारे पाट मजदूरों का एक दल बना दिया। उनकी मजदूरी, खान पान, आराम और पढ़ाई लिखाई की कोशिशें शुरू कर दीं।

"मेरे इन कामों से बाबू समाज सख्त नाराज हो गया। मैंने परवाह ही छोड़ दी। मुझे साम दाम-दण्ड भेद से साधने की तरकीबें बेकार हो गईं, तो एक दिन बापूजी मुझपर आपा खोकर गरज पड़े, 'तू मेरा बेटा नहीं है। किसी राक्षस या पिशाच है, जो तेरी माँ कहीं से लायी हो।' मुझे उनका बेटा होने का कोई गुमान वैसे भी नहीं था। पर मेरे कारण उनकी बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो जाएगी, ऐसा अन्दाज भी मैं नहीं लगा सकता था। जो हो, अचानक मुझे लगा कि वे मेरे आगे हार चुके हैं, तो मुझे जरा सी हँसी आ गई। मुझे हँसते देखकर वे और तिलमिला गये और जो सूझा सो बोलने वाले ढंग से कहा, 'तू राक्षस है तो मैं भी तेरा बाप हूँ। तुझे जेवड़ी (रस्सी) से नहीं बँधवाया तो मेरा नाम नहीं!' मैंने एक बार और हँसकर उनकी बात का मजा लिया और चला आया।

"पर यही मेरी गलती थी, बीरा! मैं अब भी बापूजी को अपना बाप समझ रहा था। उन पर जरा सा भी सन्देह नहीं किया कि वे कैसी घात लगा रहे हैं। आखिर उन्होंने अपनी दबी हुई कर दिखा दी। एक दिन मैं गद्दी के दोतल्ले पर अपने कमरे में सोकर उठा ही था कि चार

सफेद कोट पहने आदमी आए और मुझे घेर लिया। उनके पीछे-पीछे बापू जी थे, बोले, 'यही है।'

"फिर देर नहीं लगी। उन चारों ने मुझे हाथ-पैरों से जकड़ लिया। मैं कुछ समझना पूछना इससे पहले वे मुझे घसीटते खींचते नीचे ले आए। मैंने छूटने की भरपूर कोशिश की, पर व तगड़े-तगड़े चार आदमी थे। बाहर पहुँचकर मैंने देखा, अस्पताल की बड़ी सी मोटर खड़ी हुई थी। तब भी मेरी समझ म कुछ नहीं आया। इस वक्त मेरी घरवाली भी वहाँ नहीं थी। वह पहला जापा (प्रसव) कराने अपने पीहर गई हुई थी। और कौन मेरी सुनता और फिर चीख पुकार करनी चाही तो किसी ने मुह म कुछ ठूस दिया। मैंने आखिर अपने को उस मोटर म पड़ा पाया और उन चारों को मुझे दबोचे हुए। दिन अभी ऊँचा नहीं आया था। मुह अँधेरा ही था। मोटर चल पड़ी। अन्दर पड़े पड़े के ही मेरे एक सुई लगा दी गई। फिर मुझे कुछ होश नहीं रहा। क्या पता कितनी देर चल कर वह मोटर कहाँ पहुँची, पर मेरी आख खुली तो चौफेर अँधेरा था। मैंने हाथ पसार पसारकर देखा, चारों ओर बहुत पास पास दीवारें थीं।

"उस कोठरी का दरवाजा शायद दूसरे या तीसरे दिन खुला होगा। जब मुझे पता लगा कि यह पागलखाना है। मैं और पागलखाने! बापूजी का षडयन्त्र मेरे सामने था। इस तरह भला चंगा होते हुए भी मैं पागलखाने पहुँच गया, बीरा!' भक्तजी ने मेरा कधा पाकर वहां अपना हाथ रखा और कुछ साँसें लेकर बोले, "मेरे बाप ने जबरदस्त बदोबस्त किया था। मैंने लाख कहा कि मैं पागल नहीं हूँ पर छ बरस तक उस अँधेरी कोठरी से मुझे बाहर नहीं निकाला गया। मैं पागल नहीं था। पर उन दीवारों स सिर भिड़ा भिड़ाकर शोर मचाता। कभी मेरी गर्भिणी घरवाली, तो कभी अनगा और दूसरे पाट मजदूर मेरी आखों के आगे मँडराने लगे। मैं सचमुच का पागल होने लगा। रो रोकर सबको पुकारने लगा। वह पागलखाना क्या था मेरे बापूजी का रचा हुआ यातना गृह था। मैं ज्यादा बेकाबू होता तो दो-दो दिन रोटी-पानी बन्द हो जाता। वहीं सफेद कोट पहने पागलखाने के आदमी आते और मुझे कोठरी मे ही पीट पीटकर अधमरा छोड़ जाते। अब तो मैंने अपने आपको होनी के भरोसे छोड़

दिया। सूरज किधर उगता और किधर डूबता। मुझे कुछ पता नहीं लगता था।"

मदजी के बोल जैसे उस याद से सहमे हुए थे। अजीब नाटकीय लहजे में उनकी आवाज डूबती उभरती लग रही थी। इस बार की डूबी आवाज कुछ देर से उभरी, "फिर एक दिन मैं पागलखाने से निकाल बाहर किया गया। बाहर आया, तो दुनिया का रंग ही बदला हुआ लगा। मेरा दिमाग सही नहीं था, पर मैं इतना समझ गया कि देश का बँटवारा हो गया है। मेरे शरीर पर वही पुराने कपड़े थे। बस फर्क था तो यह कि वे अब एक दम ढीले हो चुके थे। उजास में मैंने अपने अंग निहार निहारकर देखे। हाथ-पर सरकंडा जैसे निकल आए थे। मैं कहाँ जाऊं ? कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था।

"मुझे बाद में जाकर पता लगा कि मैं बिहार के ही एक प्रसिद्ध पागलखाने में कैद था। इस कैद की व्यवस्था में बापूजी ने न जाने कितने रुपये स्वाह किए थे। मैं कई दिन ठोकरें खाता फिरा, तब अपने पुराने मुकाम पहुंचा। पर हालात यहां भी बदल चुके थे। बँटवारे में यह मुकाम पूर्वी पाकिस्तान में आ गया था और यहाँ के सब हिन्दू बाबू और मजदूर परिवार या तो सब कुछ छोड़ छाड़कर भाग गये या मारकाट में काम आ गये। गांव उजड़े पड़े थे। आदमी तो आदमी, दीवारें तक अपनी असली हालत में नहीं थी। मैं पुराने परिचय के सहारे ढूंढ़ता भटकता फिरा। बस इतना जान पाया कि मेरे परिवारवाले रातोरात यहाँ से भागे और यही हाल दूसरों का हुआ।

"बतानेवालों ने बताया कि माहौल भयानक हो गया था। रात दिन के साथ रहे जिन लोग भी एक दूसरे के गले पर छुरियाँ ले लेकर दौड़े। मैं पहुंचा तब तक शांति हो चुकी थी। पर मुझे न शांति चाहिए थी, न उपद्रव, मुझे चाहिए थी तो अपनी गर्भिणी घरवाली। बँटवारा हुआ ही था, सीमा-व्यवस्थाएँ इतनी मुस्तैद नहीं थी, सो जैसे मैं गया वैसे ही लौट आया। मेरे सामने रास्ते ही रास्ते थे, पर इनमें मुझे किस पर जाना है, कुछ पता नहीं था। बस, एक ही ठिकाना रह रहकर सूझता था—मेरी ससुराल। पर वह भी तो कोई पास ही नहीं था। वहाँ मैं बंगाल में भटक

रहा था और कहाँ राजस्थान ? खैर, अपार कष्ट झेलता पहुँचा, तो मेरा रहा सहा हौसला भी दरक गया। पता लगा कि मेरे बेटा हुआ था और कुछ दिन बाद ही मेरे घरवाले माँ बेटे दोनो को ले गये।

"ससुराल वालो को मेरे बारे मे तरह तरह का सुनने को मिला था। जिनमे एक यह भी थी कि मैं नदी मे डूबकर मर गया हूँ। मजे की बात यह कि मेरे पागलखाने मे होने की भनक भी किसी को नही थी। और फिर जब मुझे यह बताया गया कि मेरी घरवाली की मौत की खबर भी उन्हे बहुत देर से मिली। तो उस औरत-जात के साथ मेरे घर म हुए जुल्मो को कई तस्वीरें मेरे मन पर दर्ज होने लगी।

"मेरे मुर्दाये से शरीर मे बाइटे उठे और मुह से रीस के मारे झाग निकल आया। ससुराल वालो ने कई दिन रखा मुझे और फिर जब मेरे शरीर मे प्राण लौटने लगे, तो मैं फिर निकल पडा। आखिर मैं अपन बापूजी और भाई तक पहुँच ही गया। मैंने देखा कि उन्होंने स्वतन्त्र भारत मे भी वही ठाठ-बाठ बटोर लिए थे। वे भले ही रातो रात भागे हो, पर शायद पेट मे भी सोना छिपाकर भागे होगे। मुझे जिंदा देखकर वे जसे हडबडा गये थे। फिर कुछ नही सूझा, तो ऐसी बातें करने लगे जसे मैं सचमुच पागल था और अब ठीक होकर घर आया हूँ। मुझे लगा कि उन्होने मेरे मरने तक का पूरा सरजाम वहा किया था। मैं मरा नही, तो कैसे ? यह आज तक मेरी समझ मे नही आता। मुझमे पता नही कौन-सी ताकत थी कि मैं उन पैशाचिक यातना के छ बरस जिन्दा रह गया। खैर, मुझे अब उनसे कुछ लेना-देना नहीं अपने बेटे की तलाश थी, जो मेरे ससुरालवालो के बताये मुताबिक उनके पास ही था।'

"आपका बेटा ?" मदजी के परत परत बोलने से मैं उतावल म आ गया और बेसब्र होकर पूछ बैठा।

'हाँ, वह मुझे मिला।" मदजी डूबती आवाज मे बोले, "एक थाकल (मरियल) और पोलराया हुआ बच्चा था वह। मैंने कुछ नही कहा। मेरे पिताजी मिसरी की डली बनते बोले, "अब तेरा जीव ठीक है न, बेटा ?"

'मुझे रीस आई और मेरा कमजोर शरीर काँपने लगा। मुझे

पिताजी के इशारे पर उनके हाजरियों ने दबाव लिया। फिर होश आया, तो मैंने अपने बेटे के मुँह की तरफ देखा। जैसे उसके चेहरे पर इन जुल्मों का बयान भी हरफ-हरफ दर्ज था। जो उसकी माँ के साथ हुए हारे। मेरी डूबती साँसों को जैसे उसके इसी चेहरे ने उबार लिया।

"मैं कुछ सँभला। सोचा कि इनके बीच रह गया तो इस निर्दोष की भी दुर्गति होगी। पक्की बात थी, उन्हें जितनी नफरत मुझ पर थी, उतना धुकारा उन्होंने उसी के साथ किया था। नहीं, तो वह फूल टेस मुरझाकर होना नहीं पड़ता। मैंने उन्हें अपना इरादा बता दिया कि मुझे उनके कार-बार, धन-दौलत से कुछ नहीं लेना। मैं देश, याने जहाँ पाद हू वहीं जाकर रहना चाहता हूँ। वे आराम से मान गये। बापूजी न उदारता दिखाते हुए उपदेश दिया, 'भली बात है भले ढंग से रहे, ता देश में अपनी 'हेली' (हवेली) पड़ी है उसी में रह और वह तुझे ही दी, तेरे नाम की।'

"एक बार मुझे फिर रीस आई, पर फिर सोचा कि देश क हालात पता नहीं कैसे-क्या हों। बैठने के लिए छत का आसरा कम से कम चाहिए। और उनकी बरगी हुई यह हवेली मैंने कबूल ली।'

मदजी ने फिर विश्राम लिया। मेरी शिराओं में जैसे खून का दौरा तेज हो गया। सच्चाई के मोर्चे पर उमर-भर जूझनेवाले इस योद्धा की यह दुर्दशा! अनगिनत सवाल मुझे तीरों की तरह कोंचने लगे। मदजी यहाँ पहुँचकर भी एक सहज-सामान्य जिन्दगी क्यों नहीं हासिल कर सके? यह सवाल कुछ ज्यादा ही उतावल मचा रहा था और मदजी थे कि विनाम को लम्बा खींच रहे थे।

"आप यहाँ आ गये, फिर?" आखिर मैंने पूछ ही लिया। तभी मुझे लगा कि मेरे बाल काँपते-काँपते निकले हैं और गला भर-भर आया है।'

"सुण बीरा!" मदजी जैसे किसी कटिदार घेरे को साँघकर निकले, 'मैं अपने बेटे को लेकर यहाँ चला आया। यहाँ याने 'देश'। मैं कोई दस बरस बाद अपने देश आया था। यहाँ के हालात भी बदले बदले थे। लोगों ने मुझे पहले तो पहचाना ही नहीं और जब पहचान लिया तो बताया कि उन्होंने तो मेरे बारे में कुछ और सुना था, मैं तो मदी में कूद

वर मर गया था या साधू बन गया था। पर देर-सवेर यहाँ के लोगों ने मुझे अपना लिया। मैं अब क्या करूँ? पेट भरने का सवाल था। पास में लाल पैसा भी नहीं था। मरकर लौटे हुए का विश्वास भी किसे होता! मुश्किल थी लेकिन अपनी जमीन आखिर अपनी ही होती है। कुछ दिन आस-पड़ोस के सहारे बीते। फिर मुझे काम मिल गया। इन दिनों आज का यह कस्बा, गाँव सरीखा ही था। दूकान-कारबार इतने नहीं थे। यहाँ के ज्यादातर मर्द परदेश ही कमाते थे। उन्हीं दिनों यहाँ सेठ छोगराजजी की दूकान थी, जिसमें वे दूकानदारी तो नाममात्र की लेकिन गिरवी साहूकारी का काम ज्यादा करते थे। कहने सुनने से उन्होंने मुझे अपना मुनीम रख लिया। बापूजी का नाम ले लेकर उन्होंने बहुत थोथी कृपा भी जताई लेकिन मैंने यह सोचकर कि पेट पालना जरूरी है, उनकी कृपा ग्रहण कर ली।

"यह हवेली तब ऐसी खस्ताहाल नहीं थी। मैं और मेरा बेटा दोनों इसमें रहने लगे। कुछ वक्त निकला कि मुझे यह मुनीमी छोड़नी पड़ गई। बात यह थी कि सेठ छोगराज गिरवी रखने के मामले में पूरा कसाई था। औरतों के घाघरे तक गिरवी रखने में सकोच नहीं बरतता। कितने खेत और कितने घर बार सेठ की जाँघ नीचे दबे थे, कोई अनुमान नहीं था। गवेड़ी किसानों को सेठ के आगे गिड़गिड़ाते देखकर मेरी छाती में कुछ कसमसाने लगता। कितने ही औरत मर्द ब्याज के बदले सेठों की बेगार करते थे। यह सब देखते हुए रह रहकर अलगा याद आने लगता। पाट (जूट) की बन्दू में सुबह से शाम तक सिर घुसेड़े रहनेवाले व मजदूर तो यहाँ नहीं थे, पर उनके जैसे दूसरे बहुतेरे थे।

' और उस साल बेतरह अकाल पड़ा। चौफेर धूल के भतूलिये उड़ रहे थे। भूखे प्यासे लोगों की भीड़ जुट जाती। उस दिन, जब मैंने नौकरी छोड़ी, वो नजारा मुझे ज्यों का त्यों याद आता है। एक औरत अपने बच्चे को गोद में उठाये सेठ के सामने खड़ी थी। 'अरे, बिना कुछ अडाणगत (गिरवी) रखे तुझे क्या दूँ?' फटे बाँस सरीखे गले से सेठ उसे झिड़कियाँ दे रहे थे। औरत ने घूँघट खींच रखा था। उसकी अवस्था कोई ज्यादा नहीं थी। कुछ देर झिड़कियाँ खाने के बाद उसने अपने गोद के बच्चे को

सेठा के आगे बढा दिया। उसका अर्थ यह था कि मेरे पास इसके सिवाय कुछ भी नही है, इसे ही गिरवी समझकर रख लो। जैसे ही उसने दोनो हाथो मे झुलाते हुए उस बच्चे को सेठ के करीब पहुँचाया, सेठ रीस मे बकाबू होकर उस बच्चे को परे धकेलते बोले, 'इस कीडे का क्या बटेगा बोलती है तो अपनी कीमत बोल ?'

"वह बच्चा बेंजार धक्का खाकर औरत के हाथ से छूट गया और पहले, सेठ जिस तख्ते पर बैठा था, उसके सिरे पर गिरा फिर 'लद' की आवाज करता पक्की जमीन पर। मैं पास ही बैठा खाते लिख रहा था। मेरा खून एक समचे ही दौडने लगा जसे, लपककर बच्चे का उठाया, और उसकी माँ को थमाया, और सेठ के मासदार गाल पर सज्जे हाथ को खीचकर झापट धर दी। सेठ पीड से तिलमिलाकर चीखा। उसके हाजरिय दौडे और मुझे पकडा। उसी वक्त नौकरी छूट गई।

"पर क्या सेठ इतने मे सबर करते। स्वत त्र भारत की पुलिस को मेरी हकडी उतारने का काम सौपा। तब यहाँ थाना नही खुला था। पास की किसी चौकी से पुलिस पहुची और मुझे पकडकर ले गई। वहा से पिट कर आने के बाद गाँव मे मेरी नयी पहचान बन गई। इतने बडे सेठ को थप्पड मारने का अजीब दबदबा हो गया।

"तभी स्वत त्रता की हवा पसरना शुरू हुई। चुनाव का दौर आया और मैं बिना कुछ जान समझे नेता कहलाने लगा। काँग्रेस और दूसरी पार्टियो की बातें चलती। इन सबके बीच म कमजोर-सी सूरत म कम्यू-निस्टो की चर्चा भी होती। लोग कहते कि कम्यूनिस्ट पार्टी 'लूट खावणी' पार्टी होती है और कम्यूनिस्ट का अर्थ है 'कौमनिष्ट' याने जो कौम का नष्ट कर दे। इन्ही दिनो यहाँ इस 'कौमनिष्ट' पार्टी की सभा हुई। मैंने दूर खडे खडे भाषण सुने। सुनकर मुझे लगा कि बिना जाने समझे भी मैं तो शुरू से ही इस पार्टी म हू। मैं पढा लिखा नही था और न मुझे आज से पहले यह पता था कि जूट मजदूरो के लिए मैंने जो लडाई मोल ली थी, वही इस पार्टी का खास मुद्दा है।

'सभा उठने पर मैं उन भाषण देने वालो के पास पहुँचा और कहा, "मैं आपकी पार्टी म मिलना चाहता हूँ।' मेरे भालेपन पर वे हँसे और

बोले, 'अच्छी बात है, तुम आज से हमारी पार्टी म हो, ठीक है !' बोलने वाले ने किसी का नाम लेकर जोर से पुकारा और उसके आन पर मुझे उसके सुपुर्द करते हुए कहा, 'ये देखो नये कामरेड इनकी मदद करना।'

"उसने मुस्कराकर मुझे देखा और पूछा, 'क्या नाम है ?'

'मदन मोहन।' मैं आत्म विश्वास से बोला।

'वे थे कामरेड गणपतजी। उस दिन के बाद मैं उनके इद गिर्द ही रहने लगा। वे पास के किसी गाव से अक्सर आते थे। उनके साथ से मेरी समझदारी बढने लगी और कई बातें, जिनके बारे मे मैंने पहले कभी सोचा तक नहीं था, मैं जानने लगा। मुझे लगा कि मेरे जैसे के परिवारो म सिवाय 'वाणिकी' पढाई के, बच्चो को और कुछ नही पढाना उन्ह धन के अलावा सब बातो से अनजान रखने का पुश्तैनी षडय त्र है। मेरे अपने साथ यही हुआ। घर पर आनेवाले मास्टरने पता-ठिकाना लिखने भर की अंग्रेजी सिखा दी, बापूजी ने कान उमठ उमेठकर वाणिकी रटा दी और मैं कारबार मे लग गया। दीन दुनिया से आखें मींचे धन कमाना, चाहे किसी आदमी की खाल उतारनी पड जाए, मेरे खानदान के पास पीढियो से यही शिक्षा रही। इस शिक्षा से आदमी क्या बन सकता है इसका उदाहरण मेरे बापूजी और यहां के एक-दो राय बहादुर सेठ भी थे। खर, कामरेड गणपतजी के साथ से मेरी अक्ल की खिडकियां खुलन लगी थी। मुझे लगने लगा था कि कुए मे से निकलकर भरपूर आसमान को अब ही देख रहा हूं कि मेरी यह हालत हो गई।"

'यह हालत ?' मदजी अचानक बात को तोडकर हांफने मे थमे तो मुझे याद आया कि ये वही मज्जी हैं जिन्हें लोग बावरा मानते हैं और गाँव के बालक इन्ह छेडकर भाग जाते हैं।

"हां वीरा, यह हालत" मदजी तपाक सेबोल पडे, "तुम दौराराम को तो पूरी तौर पर जानते हो न ?"

"हां लेकिन क्यो ?" मैंने पूछा।

'सुण, इसने भी उन्ही दिनो ननागिरी शुरू की थी। इसके बाप ने उम्र भर सेठो की लठैताई की थी। इलाके का नामी लठत था। वह मरते

वक्त अपनी पाप और अत्याचार की खासी कमाई छोड़कर मरा था। अब तो इस शेराराम के अपने उलट-सीधे सौ सधे हैं। पर जीते-जी इसके बाप ने इसे एक लाल पैसा नहीं दिया था। नामी लठैत का बेटा होना बेशक इसके सिर चढ़कर बोलता था। इसके चलते शुरू से ही अवारा, बदचलन था। मेरी हवेली इसके घर से ज्यादा दूर नहीं थी। अब भी नहीं है।"

"हाँ, मेरे घर मे दो गली इधर ही है, आपसे दूर कहा।" मैं मदजी के अनचाहे विस्तार से झुँझलाकर खुलासा देने लगा।

वे बोले, "हाँ, तो मैं परदेस से इस हवेली में आकर रहने लगा, तो इसने मेरे साथ जाने क्यों मेल-मुलाकात बढ़ानी शुरू कर दी। मैं इसे मिलाचार ही समझने लगा। फिर यह रात बेरात आने लगा और कई बार मेरी हवेली में ही सोता उठता। इसके आवारगी के किस्से तो कई थे, पर मेरे सामने यह नेक पाक रहता। मैंने सेठों की नौकरी छोड़ दी थी और कामरेड गणपतजी का साथ पकड़ लिया था, तब की बात है। यह एक दिन बहुत रात गए मेरी हवेली आया। बुरी तरह हाँफ रहा था और घबराया भी नजर आ रहा था। दरवाजे पर खड़े खड़े ही इसने कहा, 'मद, मुझे जल्दी से अन्दर आने दे, फिर सारी बात बता दूंगा। मैंने दरवाजा छोड़ दिया। यह अन्दर आ गया, तो मैंने दरवाजा बन्द किया और इसके सामने आ खड़ा हुआ। इसकी हाँफणी कुछ थमी, तो बोला, 'वे यहाँ नहीं आएँगे, पर आ जाएँ तो मुझे बचा लेना।'

'कौन?' मैंने पूछा।

'वे,' यह बताते कुछ झिझका, फिर जैसे छाती मजबूत करता बोला, 'पास के गाँव के साँसी।'

"साँसी?" मैं चौंका।

'हाँ, मदा मैं तुम्हें सब-कुछ बता दूंगा। आधा हिस्सा भी दूंगा।' वह उसी तरह बोला।

यह, यही शेराराम?' मदजी के इस रहस्य-वृत्तांत से मेरा कौतूहल बढ़ने लगा।

"हाँ, यही शेराराम रे, यही।" मदजी को जैसे मेरी आवाज़ में

आई अविश्वास की बू से ठेस लगी। वे कुछ झल्लाए से बोले, "फिर इसने मुझे सारी बात बताई। यह निचली जातियों की औरतों के साथ उनकी गरीबी लाचारी का फायदा उठाकर अपनी काम वासना मिटाता था। पर उस दिन तो इसने वह काम किया था कि घिन से मुझे उल्टी आने लगी। इसने बताया कि इसका जिस औरत के साथ शरीर का खाता खुला था, उसके एक चौदह बरस की फूटरी-सी बेटी थी। इसने उस छोरी का ब्याह बाहर का सासो बताकर अपने किसी आदमी के साथ करवा दिया, फिर उस ले जाकर पंजाब मे बिकवा कर पैसे बना लिए।"

"यही शेराराम, जो नेतागिरी करता है।" इस बार तो मैं एकदम अविश्वासी बाल बोल गया।

"अरे, हा रे!" मुझे सुनकर लगा कि मदजी इस बार तो सचमुच पेट से बोल पड़े है। मुझमे सिहरन हुई कि कही पीपल का प्रेत उनम फिर न उतर आए!

पर मदजी तुरत शात दीखने लग और बोले, "शेराराम न मुझे बताया कि उसन पहले भी ऐसे कई सौदे किए थे। इस बार उनको परका नही दे सका और उस रात जैस ही उनकी बस्ती पहुँचा, सारे साँसी मद एकठ होकर उसे मारने पर उतर आए।

"और उन्होने पुलिस म इत्तला कर दी होगी तो?" मैंने शेराराम का डराना चाहा।

'पुलिस क्या होती है, उन्ह अभी पता ही नही। शेराराम निश्चित से बालने लगा, 'और फिर वे कौन सी अपनी छोरी माँग रहे हैं। व तो कहते हैं कि छोरी के जितने पैसे मिले हैं, वे उनको दे दू।'

मैं कुछ नही बाला और शेराराम की कही कही सुनता गया।'

'आज मैं अकेला घिर गया। कल तो उनका ब दोबस्त कर दूगा, पर आज वे तावे नहा देंगे। शाम से ही सजकर बठे है। जरूर मर घर भी पहुँचेंगे, मैं तुम्ह इस अहसान के बदले आधा हिस्सा दूगा, पर यह बात अपन तक ही रखना।'

'मेरे गले म तो जसे थूक तक सूख गया। मैं सूखे गले से बोला, 'यह हिस्सा-पाँती तुम अपने पाप ही रखना।'

'पर ' शेराराम बोला।

'पर क्या ? मेरे यह सब किसी से कहना जरूरी थोड़े ही है।' मैंने उससे पीछा छुड़ाने की उतावल मे कहा।

"उस दिन बाद शेराराम ने मेरे घर आना जाना एकदम बद कर दिया। शायद उसकी समझ मे आ गया था कि उसने गलत आदमी को अपना राजदार बनाकर बड़ी भूल कर दी है। और यही सच था। उसकी यह करतूत मुझमे किसी पकाव खाए फोड़े सी दूखनल भी थी। मेरा मन कहने लगा कि उसकी यह करतूत खुलम खुल्ला न कहू डाल, तब तक मुझे चैन नहीं।" कहकर मदजी फिर विश्राम लेने लगे।

'यह शेराराम ! यह, जो आज एम० एल० ए० बनने की तैयारी कर रहा है, इतना घिनौरा (घृणित) आदमी है ?" पूछते पूछते जैसे मैं अन्दर-बाहर से सिहर उठा।

'घिनौरा ? इतने म इसने अपना घिनौरापन कहा दिखाया ! खास बात तो यह है, जो इसने मेरे साथ किया।" मदजी इस बार अविश्वसनीय धीरज से बोले और कुछ थमकर बताने लगे, "इसने इधर नेतागिरी पूरी तौर पर शुरू कर दी थी। यह गाव बढ़ते बढ़ते कस्बा हो गया था। तहसील और नगरपालिका के दफ्तर खुल गए। वह शायद इस गाँव का पहला नगरपालिका का चुनाव था। शेराराम वार्ड मेम्बर के लिए चुनाव मे खड़ा हुआ था। मैं इसी के वार्ड मे था, सो मुझे मनाने मेरे पास आया। मुझसे कहा कि मैं उसे वोट भी दू और सपोर्ट भी करूँ। मुझे कामरेड गणपतजी ने इसे वोट तक देने से मना कर दिया। मैंने उससे दो टूक कहा, 'मैं तुम्हे न तो वोट दूगा और न ही वस पड़ते दूसरो को देने दूगा।'

"इस बीच ही मेरा सबसे बड़ा सहारा टूट गया। एक दिन अचानक सुनने म आया कि कामरेड गणपतजी की हत्या हो गई है। फिर पूरी बात का पता चला। पास के गाँव मे अभी तक रजवाड़ो सी ठकुराई और 'रावळ (सामतशाही) की मनमानी चल रही थी। गाँव के अछूतो को उन कुण्डियो से, जिनमे गाय डागरे पानी पीते थे, पानी भरना पड़ता था। कामरेड गणपतजी की अगुआई मे अछूतो ने सबके साथ पानी भरने की चुनौती दी थी। गाँव का ठाकुर कुए पर नगी तलवार लेकर खड़ा हो गया

था और जैसे ही कामरेड गणपतजी ने अछूतो को आगे बढकर पानी भरने को ललकारा, ठाकुर ने लपककर तलवार उनके पेट के आर पार घुसेड दी थी। मुझे तो ऐसे लगा जैसे मेरा एक बाजू टूटकर अलग जा पडा। मैं उनकी कम्युनिष्ट पार्टी का सदस्य था या नही, पता नही, पर वे मुझसे हमेशा यही कहते कि हमने लडाई छेड दी है, एक दिन हमारी जीत जरूर होगी।

"मैं उनके मरने से अडोला-अडोला (सूना सा) हो चुका था। इधर वे चुनाव हुए और दोराराम हार गया। वह दूसरे दिन ही मेरे पास पहुचा, 'तुमने ठीक नही किया मैं तुम्हारा ध्यान रखूगा।'

मैंने पूछा, 'कैसे ?'

'तुमने लोगो को मेरे बारे मे उलटी पिला पिलाकर भडकाया और मेरे वोट ताडे। मुझे पता है, तुमने किससे क्या कहा।'

"मैंने किसी से कुछ नही कहा था, पर इस झूठी तोहमत और दादागिरी से चिढकर मैंने कहा, 'हाँ, कहा और जिससे नही कहा, उनसे भी अब कहूँगा। तुम मेरी दुम काटो, तो जरूर काट लेना।'

"उसने मेरे सामने देखकर जबडा भीचा और कटकटाकर बोला, 'तुम्हारा तेरी ऐसी काटूगा कि याद रखेगा।'

मदजी एक बार फिर चुप हो गए। बाहर शायद उजास धीरे धीरे अपने पाँव पसारने लगा था। चिडियो की चहचहाट शुरू हो रही थी। मैंने सोचा कि पूरब दिशा मे सूरज के स्वागत म गुलाल उड रही होगी और कुछ देर मे ही धूप का धनी अपना मुह उठाए बाहर आ जाएगा।

'बेटा !'

मैं सुनकर चौका। मदजी को आज तक किसी को इस सम्बोधन से पुकारते नही सुना था। छोटा हो या बड़ा ठेरा, वे हरेक को 'छोरा' कहकर ही पुकारते। साथ ही उन्होंने मेरे सिर पर अपना हाथ रख दिया।

उजास धीरे धीरे उस अधढही, जजर चौखट को लाँघकर अन्दर आ रहा था।

"इस बात को कई दिन बीते। बीच मे मेरे बापूजी के मरने की खबर भी आई, पर मैं नहीं गया। मैं फिर उधार की जमीन पर खेती करने लगा

था। दो जीवों के लिए अनाज हो ही जाता। सरकारी स्कूल मे मेरा बेटा पढने लगा था। वह कोई तेरह चौदह बरस का हो गया था। और ।" बोलते-बोलते मदजी की आवाज ठस हो गई जैसे।

आसरे मे अब भरपूर उजास था। मैंने मदजी को गौर से देखा। एक तरफ की दाढी अस्त व्यस्त छितराए काले सफेद बालो के बावजूद भी अब वे उतने विकराल नही लगे मुझे। बस, उनके चेहरे पर दुःख और थकान नजर आई।

वे बोले, "मैंने सदैव अन्याय से मोर्चा लिया और इसी के पीछे बावरा बन गया। मुझ-सा बावरा तो बहुतो को होना चाहिए। मेरा बेटा रहता, तो मैं उसे भी ऐसा ही बनाता।"

मदजी की आँखो मे से दो चार मोती धीमे धीमे लुढक पडे और उनके सूखे सूखे गालो पर छितराने लगे। मैं जान गया कि उनके ये आसू बहुत मुश्किल से रस्ता पाकर बाहर आए है।

"उसका क्या हुआ ?" मैंने भोलेपन से पूछा।

"क्या हुआ ?" मदजी ने अचीतो तैश खाकर उत्तर दिया, "इस शेराराम ने अपने आदमी की ट्रक से उसे भरे बाजार मे कुचलवा दिया। उसकी अतडिया ट्रक के पहिये से लिपट गई। वह कच्चे काकडिए की तरह फीस गया। उस दिन दिवाली थी। लोग दिये जलाने के लिए तेल-घी खरीद रहे थे, जब जाकर मैंने उसकी अतडिया इकट्ठी की। ड्राइवर ट्रक वही छोडकर भाग चुका था। फिर पुलिस आई और झूठी सच्ची तफ्तीश करके वह मासूम लाश मुझे सौंप दी। इत्ती देर तो मैं पथराया सा रहा पर अचानक मुझमे रीस ने विकराल रूप धार लिया। मैं चीखकर भागा, "शेराराम, तूने, तूने मारा है इसे मैं तुझे नही छोडूगा ।"

"लोगो ने मुझे पकडा। मैं बेकाबू हो गया था। अपने ही कपडे फाड रहा था। धूल उछाल रहा था। लोगो ने मुझे बाँध दिया और मेरे देखते-देखते उसकी छत विक्षत लाश को गठरी बनाकर चिता पर रख दिया।

"फिर मेरा वेग कुछ थमा, तो मुझे पता लगा कि थाने मे शेराराम खुद अपने आदमी को ले आया था। चलान मे यह लिखा गया कि मेरे बेटे की मौत पिछले पहिए के नीचे दबकर हुई है। इसमे ड्राइवर का कोई

कसूर नहीं होता। यह सब सुनकर मैं फिर बेकाबू हो गया। थाने के सामने पहुँचकर हाय तोबा मचाने लगा। थानेवाला ने मुझे पागल करार देकर, चार पांच सिपाही लगाकर घर पहुँचवा दिया।" मदजी क्षण भर थमे, फिर बोले, "और मैं एक बार फिर पागल हो गया बेटा!"

मुझे लगा कि मेरी आँखों मे कुछ तर रहा है। मैंने उन पर हथेली ढापी तो वह गीली हो गई।

मैंने सोचा, मदजी का किस्सा खत्म हुआ, पर वे फिर बोलने लगे, "तीन-चार बरस मेरा यही हाल रहा। मैं बाजार पहुँचता और मुझमें वही बवाल उठ खड़ा होता। मैं ऊल जुलूल बकता। धीरे धीरे यह जग मानी हो गयी कि मदजी बावर हो गए हैं। मैं कुछ सतुलित भी रहता, तो टीगर टोली मेरे कपड़े खींच खींचकर चिढ़ाने लगती। उधर नेराराम की नेतागिरी और कमाई दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई, इधर मेरी यह पुरानी हवेली बिना मरम्मत सँभाल के ढहती गई।"

"पर, मदजी! अब आप ऐसे बावर बनकर क्या रह गए हैं?" मैंने अपने ही अनजाने मे पूछ डाला उसे।

"सुण बेटा पाच सात बरस तो जरूर मेरा मुझ पर काबू नहीं रहा होगा, फिर ऐसी बात नहीं रही। मेरा चित्त स्थिर होने लगा। तो भी मैं जान बूझकर बावरा ही रहने लगा। इस बावरेपन मे यह दुनिया और साफ साफ और नयी नजर आने लगी मुझे। थाना-पुलिस आराम से सोता रहता है और मेरी नींद हराम रहती है। आसपास का सारा जोर-जुल्म और पापाचार उससे पहले मैं ही देखता हूँ। मैं नेराराम को नहीं पहुँच सकता, पर इस बावरपन मे उसे जी भरकर कोस तो सकता हूँ यह बावरापन गया, तो मुझमें क्या रह जाएगा?'

"आपको पता है कुछ रात को आपके मुह से रीस के मारे झाग छूटने लगे थे।

'हां, रीस आती है मुझे यह रीस ही मेरा धन है यह धन किसे सौंपकर मरूंगा यही फिक्र करता हूँ। मुझे पक्का भरोसा है कि मेरी रीस से भले ही कुछ न हुआ हो, पर मेरे बाद के लोगों की रीस जरूर रंग लाएगी। आदमी के आदमी का ही ढोरों की तरह खाने और भूख प्यास

म गाद का बच्चा अडाणगत (गिरवी) रखनेवाले हालातो की इस पविञ रीस की सरत जरूरत रहेगी।'

मैं मदजी के चेहरे को घूर-घूरकर देख रहा था। उनकी फैली हुई आंखा म जैसे कोई भव्य झांकी नजर आ रही थी मुझे।

आखिर मैंने उस आसरे मे एक बार और नजर दौडाई। कोने म नाली के पास पमाव सूखने से जम चाढे दीख रहे थे, तो उसस कुछ दूर धुएँ से काली हो चुकी तीन ईंटें राख पर पडी थी, जिनमे पता नही कितने दिन पहले मदजी ने चूल्हा जलाया होगा और अपनी राटी सेंकी होगी। एक टूटे हुए कांच के पास जग खाया रेजर पडा था, जिससे शायद मन्जी ने अपनी दाढी खुरचने की चेष्टा की होगी और आधी खुरचकर ही छोड दी होगी।

फिर मैं उठकर बाहर चला आया। मदजी अपनी झोली हो चुकी खाट म मूर्तिवत बैठे थे। जैसे उन्होने अपनी सारी जद्दो जहद भी मेरे साथ विदा कर दी हो।

रातभर घर न पहुँचने की पूछ ताछ का घर पर क्या जवाब दूगा, मुझे इस बात की जैसे कुछ फिक्र ही नही थी।

रतजगा

थके-हारे सूरज का उजास कस्बे के कंगूरों पर स्याही बनकर बिखर रहा था। भीमकाय हवेलियों से घिरी सँकरी गली में सावित्री उतावली-सी चल रही थी। ऊँची दीवारों के सायों ने गली पाट रखी थी, जिससे अँधेरा पहले ही नीचे उतर आया था। इस अँधेरे से निर्भय सावित्री बढ़ती जा रही थी।

भक ! किसी हवेली के सीढ़ों पर बल्ब जला।

छिटकती रोशनी में सावित्री को वह दिखाई पड़ा—मरियल कुत्ता। हाथ में दबे ठोंगे पर सावित्री की पकड़ शिथिल होने लगी। कुत्ता धीमे धीमे पास आ रहा था। सावित्री ने ठोंग को आँखों के आगे लेकर तोला। उसके मन में घृणा छूटने लगी। कुत्ता सामने पहुँचते ही सावित्री ने ठोंगा उलट दिया। असली घी वाला केसर मिश्रित घेवर ठक से जमीन पर जा पड़ा। एक बार सूंघकर कुत्ता घेवर चबाने लगा, चबड़ चबड़ !

कुछ देर कुत्ते को घेवर खाते देखती सावित्री खड़ी रही, फिर चली तो अपने में हलकापन लेकर। जैसे घेवर नहीं, चट्टान छिटककर चली हो।

"सावत्तरी, यह ले, टाबरों (बच्चों) के लिए मिठाई लेती जा।" लौटते वक्त नाम बिगाड़कर बोलनेवाली बड़ी सेठानी ने यह ठोंगा पकड़ाया था। वहीं खोलकर देखा, तो सावित्री को अपनी छाती में भाला धँसता जान पड़ा था। मन हुआ था कि पलटकर ठोंगा सेठानी के मुँह पर दे मारे और बता डाले कि लेकिन सावित्री ने थामे रखा खुद को। ठोंगा लेकर चुपचाप हवेली की सीढ़ियाँ उतर आई।

सावित्री सात दिन के लिए हवेली में रसोईदारनी बनी है। ब्याह के विशाल रसावड़े को सँभालने वाली दानी सयानी रसोईदारनी। उसकी दोहरा के बूते सन्देश लानेवाली नाइन ने कहा था, "दस रुपये दिहाड़ी, सात दिन का खाना पीना और इनाम बख्शीश मिलाकर दो सौ की पक्की कमाई है। सावित्री, मेरी सौगन्ध, इन्कार मत करना। अरी! आपा यहां सँभालोगी तो तेरी टाबरी (औलाद) कौन पालेगा?"

मुंहलगी नाइन की मारक सहानुभूति से सावित्री सूत-भर भी विचलित नहीं हुई थी। यों पग-पग पर ढहना छोड़े सावित्री को अर्सा बीत गया। अब तो ऐसा मौका आन पर उसे फकत फीकी-सी हँसी आती है—सावित्री! क्या तू ही थी जो खुद को सेठानी समझने लगी थी? और तेरे लिए यह बात कब इतनी सीधी-सच्ची बन गई कि तेरे बच्चे कौन पालेगा?"

फाल्गुनी बयार में उतरी ठढक के खिलाफ अपना पुराना शॉल कसते सावित्री घर पहुँची। एक बड़े घर के पिछवाड़े गोदामनुमा कमरा और टीन की छतवाली रसोई, यही है सावित्री का घर। बल्ब की रोशनी में मूर्तियाँ देखकर सावित्री ने जाना—श्रीकांत आया है। जरूर सबके बीच रसोई में होगा।

गुड़ की भेली को लगे चीटों की मानिन्द सब चूल्हे को घेरे हुए थे। कैलाश तिनका गड़ाकर अंगारे कुरेद रहा था। राजू रुआसा-सा सिर झुकाए बैठा था। सिर्फ सीमा सो रही थी।

"खाना बनाया?" सावित्री ने पूछा।

"हाँ, बनाया था।" बदरंग ऊनी कनटोप में अँगुली डाले सावित्री के पतिदेव, रतन बाबू ने बताया।

सावित्री ने कैलाश की तरफ देखा। वह पक्का जवाब चाहती थी। कैलाश मुस्कराया, तो सावित्री को याद आया कि इस स्कूल गए तीन दिन हो गए हैं। उसकी अनुपस्थिति में घर सँभालने के बहाने से लाचार कर देता है।

"माँ" अबकी राजू बोला और ठिठक गया।

सावित्री को समझते देर न लगी। सवेरे राजू ने जिद की थी—साथ चलूगा। हवेली के निकट तामझाम म उसकी सुध कैसे लेता? लटान पर नही माना, तो मार पडी। राजू सुबकता रहा और सावित्री पूजा-पाठ करती रही थी। निकलने लगी, तो एक बार फिर छाती स लगाकर राजू को लडाया था, "मैं आज अपने साथ हवेली से मिठाई लाऊँगी। तू सोना मत, है न!"

अब तक राजू माँ के खाली हाथ भाँप चुका। अपनी ठौर खडा होकर पैर पटकने लगा, "मिठाई ऊँऽऽऽ!"

सडाक्!

"बदमाश! ले, मैं दू तुझे मिठाई। नालायक सुवह से सता रहा है।" कनटोप से हाथ निकालकर रतन बाबू ने राजू को झापड दे मारा।

राजू लडखडाया कि श्रीकात ने लपक कर थाम लिया। उसने राजू को गोद म उठाया और रसोई से बाहर चला आया। रतन बाबू पीछे निर्विकार भाव से अपना कनटोप ठीक करने लगे। हिलने डुलने से ऊपर सरक आया था।

सफेद बादलो से छनती चाँदनी म राजू को लिए श्रीकात घर से दूर निकल आया था। तभी पीछे से सावित्री की पुकार सुनी, "श्रीकात बाबू इसे लेकर कहाँ जाओगे?"

"भाभी।" घूमकर श्रीकात ने देखा—सावित्री राजू को लेने बाह पसार चुकी थी। रोते हुए राजू को सावित्री की गोद मे उतारकर श्रीकात ने सावित्री को देखा। उसने श्रीकात का घुटा घुटा सम्बोधन शायद सुन कर भी नही सुना और मुडकर जाने लगी।

अपलक देख रही है सावित्री—ऊपर गरलपान करते नीलकण्ठ और नीचे समुद्र मथन मे लगे देव दानव। देखते देखते सावित्री का संस्कार पोषित मन अभिभूत होता है। शिवजी की अधमुदी आँखो से कैसी शाति बरस रही है—जहर गले से उतारकर भी! अचानक सावित्री ने कैलेण्डर की दशा पर ध्यान दिया। कितना पुराना हो गया यह कैलेण्डर! कसी-

कसी आँधियों ने इसे झकझोरा है। दीवार पर चक्कर खाने से इसके चारों ओर रगड़ का दायरा उभर आया है। किनारे फट चुके हैं। कहीं ऐसा न हो कि शिवजी के कण्ठ में ठहरा हुआ जहर छलक जाए और सबको लील ले। चाहे जो हो, वह इसे उतारेगी हर्गिज नहीं। समुद्र मथन का शोर सावित्री को अपनी ही छाती से गुजरता मालूम होता है। उचाट नींदवाली सावित्री की रातों में यह फटा-पुराना कैलेण्डर ही उसका एक सहारा बनता है। कितनी कितनी बातें करती है सावित्री इस मूगी तस्वीर से!

"शिवजी, आप भी नशेड़ी थे। भाँग, गाँजा और धतूरा सबका सेवन करते थे। फिर भी संसार आपको पूजता है!" अपने मन में उठती शंकाओं में काँप गई। नशा—इस शब्द से बढ़कर डरावना सावित्री के लिए कुछ भी नहीं। इसी के बहाने उठी शंकाओं के लिए सावित्री का धर्मभीरु मन आप ही निराकरण ढूंढने लगा, मुझे माफ करना, भगवान। आप परमेश्वर हैं, निर्लोभी नाथ आपका और संसारी का कैसा मेल?"

सावित्री ने गमछा खींच लिया। अपने बिस्तर के सिरहाने तले पड़े गमछे से परस होते ही एक चिपचिपाहट सावित्री की आत्मा तक व्यापने लगी। आदमी के मुह की लार, जिसको सोचकर ही मितली आती है—इसी में तर गमछा हर रात सावित्री सिरहाने रखकर सोती है। रतन बाबू की ठुड्डी से गले की ओर उतारती लार उसे कई बार पोंछनी पड़ती है। आज वे रीस में थे, जरूर अफीम के छूतरे ज्यादा लिए होंगे। उनकी रीस किस पर थी? सावित्री याद करने लगी। कोई उत्तर नहीं था। फिर शायद खुद पर ही थी। लोग रतन बाबू के बारे में ठीक ही तो कहते हैं, "यह आदमी नहीं चलता-फिरता नशा है—अफीम का शरीर!"

कहीं आँधी उमड़ी है। खिड़कियाँ और दरवाजा बंद हैं लेकिन पल्लों पर सिर पटकती हवा की चीखें सुनने लगी हैं।

कैलाश, राजू और सीमा नींद में डूबे हैं। लार की एक तार नदी को गमछे में लपेट कर सावित्री ने सिरहाने रख लिया है। अचानक बिजली गुल हो गई है। जीरो वाट का जलता बल्ब बुझ गया है। कमरे में अन्धकार ठसाठस भर चुका है। अँधेरे में सावित्री वही आँखें ढूंढने लगी है—शिवजी की अधमुँदी शांत आँखें! सावित्री उन आँखों की

अतल गहराई मे डूबना चाहती है लेकिन कही से आकर अनगिनत लड़ियाँ उसे उलझाने लगती हैं—बेहिसाब उलझी लड़ियाँ !

कितने फूले थे सावित्री के पिता, जब सावित्री का रिश्ता इतने बड़े घर हुआ। लाखो का कारबार, मान मर्यादा और बेटी के लिए चाँद सरीखा सुरूप वर। सावित्री का सौभाग्य डाह करे जसी बात थी। बहू बनकर सावित्री रतन बाबू के घर आई, तो बालसुलभ सरलता से समूचा वैभव मुह फाडकर देखती रह गई। चौफर अपने रूप की कहानियाँ सुनती, जिसके चलते इस घराने ने मागकर उसे बहू बनाया था। सावित्री के मामूली हैसियतवाले पिता कैसे ना करते ? क्यू करते ? वे सावित्री के दुश्मन थोडे ही थे, जो यह मुह माँगी मुराद पलट देते।

उन दिनों रतन बाबू की शौकीन मिजाजी के किस्से चलते थे। कुछ लोग रात दिन उन्हे मशहूर करने मे लगे थे। वे नहाते, तो नालियों म बहे इत्र फुलेल से मुहल्ला गमकने लगता। सिल्क का सोनलिया कुर्ता जिस पर बसरे के असल मोतिया वाले बटन और ब्रासलेट की बारीक घुली हुई धोती पहनकर वे गली से गुजरते, तो रसोइयों में बैठी बहुओ के कलेजे काँप जाते। काश ! उसका घरवाला भी ऐसे गमकता महकता निकले !

अपनी चाल से जमाने की चूलें हिलाते रतन बाबू अपने पसन्दीदा पनवाडी की दुकान तक आते। सैकडो रुपये पान-किवाम के उनके खाते म दर्ज होते। देश मे रहते तब तक हर तीसरे दिन तालाबो के इर्दगिर्द रतन बाबू अपने दोस्तो के साथ गोठें उडाते। सावित्री सुध बुध भूली-सी इस व्यापार को देखती रहती। अपने पति की पकड म न आने वाली विराटता उसम अथाह भक्ति भाव पनपाने लगी।

इस इत्र फुलेल से तर आलम मे कुछ दिन बीते। इन्ही दिनो एक नई खुसुर फुसुर सुनने लगी। सावित्री को उसकी ननदो ने ही बताया कि भाई नशा करने लगा है। वे सावित्री से अपने रईस भाई को वश म करवाना चाहती थी कि शायद उसके मनाये मान जाए। अपने देवता-तुल्य वर-देवता को सावित्री क्या मनाती ? धीरे-धीरे सब उजागर होने लगा। रतन बाबू रातो म देर गए आते, तो सावित्री दरवाजा खोलने के लिए जागती बैठी होती। रतन बाबू झूलते-डालते सीढ़ियाँ चढ़ते, तो सावित्री

उन्हें सहारा देती। फिर उन्हें होश आता, तो वे रात की बात किसी को बताने से सावित्री को बरजना नहीं भूलते। इस बरजने का सावित्री शिरोधार्य करके रखती।

कैलाश के जन्मने तक यह भ्रम धन प्रतिष्ठा की ओट में छिपा रहा। लोग सीधा कहने से कतराते थे, क्योंकि जानते थे कि उनके शब्द बाण मोटी दीवार से टकरा कर औंधे मुंह ही गिरेंगे। एक दिन दीवार दरक गई। सावित्री के नामवर श्वसुर तिल्ली फटने से अचानक स्वर्ग सिधार गए। रतन बाबू का रहा सहा अंकुश भी जाता रहा। फिर तो रतन बाबू ने वे परवाजें भरीं कि कुछ पकड़ में ही नहीं आया। कारबार में हिस्सेदार भेड़िया धसान करने लगे। इससे बचा हुआ गुमाश्ते डकार गए। रतन बाबू के पास फुरसत कहाँ थी कि इधर मुंह ही कर पाते। तब बारी आई सावित्री की। अपने पति-परमेश्वर की भक्ति में बड़े घर की इस सती-सावित्री की परीक्षा होने लगी। भारी भारी गहने रतन बाबू की शौकीन-मिजाजी, जुआखोरी और एक एक तोला अफीम की कीमत चुकाने में निकलने लगे।

'सावित्री, कल तेरी औलाद बड़ी होगी। यही हाल रहे, तो क्या खिलाकर पालेगी? कुछ तो दबाकर रख।' सावित्री को सारे अपने बेगाने दुनियादारी सिखाने लगे थे। यह सावित्री भी पति के निमित्त सर्वस्व होम देने की छूट लेकर आई थी, इस सीख के अमल में पतिता होने का खतरा कैसे न समझती?

और एक दिन सावित्री ने पाया कि उसके आसपास कोई नहीं है। रतन बाबू के बेहिसाब दोस्तों का तांता टूट चुका है। चाचे, ताऊ, फूफे मौसे दूर छूट गए हैं। वह निपट अकेली और असहाय है—अपने पतिदेव की उसे दी हुई दुनिया में। इस दुनिया में उसकी अशक्त बूढ़ी सास, अबोध देवर और अपने कोख जाए लाडले के सिवाय कोई और है, तो सिर्फ रतन बाबू। फिर सास ने भी आँखें मूंद लीं। श्रीकांत का अफीमची भाई की छत्रछाया में पलते देखकर बहनें पसीज आईं। पढ़ाने के बहाने एक बहन ने उसे अपने यहाँ कलकत्ता बुला लिया। अपने बड़े घर के बड़प्पन की दुम तक श्रीकांत के हाथ नहीं लगी। वह यहाँ वहाँ भटकते-

भटकते ही जवान हुआ।

सावित्री की दुनिया और फली, तो उसमे राजू और सीमा भी चले आए। सावित्री का कई बार लगता है कि सबकुछ उसके अनजान ही होता गया है। उसे जैसे अपने पर ही विश्वास करना पडता है कि वह तीन बच्चा की मा है—मा! सीमा का आगमन तो कल की बात है, पर यह कल बीत जैसे अनतकाल बीत गया। इन दिनो रतन बाबू पर बुढापा आया नही, कही से बरसा है। और सावित्री? उसके साथ उम्र नही, सिर्फ एक अधी गति है जिसम देह नही फकत मन बूढा होता है।

यहा आने तक उम्मीद नही झटकी थी सावित्री न। बडी कडाही की खुरचन बटोरने वाले अ दाज म तीन नौर जोडकर उसने रतन बाबू को परचून की दुकान खुलवायी थी। कितनी निरीह निकली सावित्री की यह उम्मीद! यहा स उसकी गहस्थी की गाडी और भी भयानक ढलाना का रुख करने लगी। एक पुश्तैनी मकान रह गया था जिसम सावित्री अपने बच्चा समेत सिर छिपाए बैठी थी। रतन बाबू की जुबान पर एक ही बात थी—इसी का बेचकर नया कारबार शुरू करने की। अतिम सांस लेता सावित्री का भरोसा दम तोडने लगा तो उसन अपन पर वार ही कह डाला, 'पहले हम चारो को कुएँ म धकेल दो फिर नया कारबार शुरू करना।"

इसी दौर मे श्रीकात लौटा।

'भैया अकेले मकान बचेंगे कस? उसमे मेरा हक भी तो है। भाभी, मुझे गलत न समझें मैं आपमे हक नही जतला रहा। सिर्फ मकान को बिकने से रोकना चाहता हूँ।" हालात ताल-परखकर यही कहा था श्रीकात ने।

आंधी सँभली लगती है। पल्ला पर हवा की चोटें धीमी हो गई हैं। बल्ब फिर जल गया है। अँधेरे म अभी-अभी जन्मा यह क्षीण उजाला भी कीमती सा लगता है सावित्री को। कलाश, राजू और सीमा को भली प्रकार कपडा ओढाया उसने। उधर देखा रतन बाबू का तकिया लार से गीला हो चुका है। गमछा खींचने बढते हाथ म ऐंठन सी क्यो हुई आज!

सावित्री ने हाथ रोक लिया। शायद वह समझ रही है कि इस लार का सिलसिला पोछन की हद से गुजर रहा है।

सावित्री की निगाह उलझकर रह गई है—अपने पतिदेव के चेहरे पर। चालीस के आसपास की अवस्था मे खिचडी, रूख बाल, भीतर धँसी आँखें और हडियल चेहरा! क्या यही है उसका चाद सरीखा सुरूप वर? एक फाँस-सी खटकने लगी है सावित्री के मन म। यही वह आदमी है, जो सनक की हद तक सावित्री को पर्दों म रखता था। कमरे की खिडकिया खुली रहने की सख्त मनाही थी। घूघट सूत भर उठा रह जाता तो इसे गुस्सा आन लगता। दस बरस का बच्चा भी सावित्री से मिलता, तो यह उसम पर-पुरुष की गध सूघने लगता। अपने परम मित्रो मे से भी शायद ही किसी को इसने सावित्री का मुखडा दिखाया हो। दुल्हन बनने तक सावित्री स्कूल जाती थी, वह बनने के बाद नही गई। घराने की वह भला किस प्रयोजन से पढन जाती? परदश कमाने गए पति परमेश्वर को पत्र लिखने से बढकर औरत की पढाई का मोल ही क्या? इतनी योग्यता तो सावित्री साथ लेकर आई थी।

यह व्यवहार सावित्री के लिए कुछ भी बजा न था। उलटे वह इस फिक्र मे घुली मरती थी कि रतन बाबू उसकी ऐसी देखभाल कम न कर दें। सावित्री को रतन बाबू के इस नमूने व्यवहार म अपने प्रति उनका पति प्रेम ही नजर आता। इस कथा को वह एक अबोध असोच स्वीकार के रूप म सतीत्व का जगमगाता जेवर समझकर पहनना पसद करती थी। अब यही सावित्री को लगता है कि उसे पर्दों म छिपाने की सनक के पीछे छिपानवाले के अपन मन का चोर ही तो नही था? यह चोर सावित्री के असती हो जान का डर ही नही था क्या? यही था, तो आज वह कौन ऐसी बढी हो गई है कि चाहे तो और सहसा सावित्री को लगने लगता है कि वह अपना नही, किसी और का बुढापा ढोन को विवश है। सोचत सोचत सावित्री का काया की ऐसी सुध आई कि अपने ही हाथ से उसने खुद को ऐडी से चोटी तक सहला डाला। उसे अपनी काया म झकार-सी सुनाई दन लगी, धीरे-धीरे एक साफ आवाज बनकर उभरी—एक ऐसी आवाज जो फक्त औरत की होती है, 'नही सावित्री,

तेरी काया को फकत अन्न की ही जरूरत नहीं है अभी।'

कैलाश नींद मे कुनमुनाया, तो सावित्री उधर देखने लगी। वह कोई सपना देख रहा होगा। उसने पहले मुह सिकोड़ा और फिर मुस्करा पड़ा। सावित्री को उसे मुस्कराते हुए देखकर हसी आई, "मेरी काया का न सही, काया के हिस्सो की जरूरत तो फकत अन्न ही है। मैं अपने लिए नहीं, अपनी काया के इन हिस्सो के लिए हूँ क्योंकि मैं औरत नहीं सिर्फ मां बच गई हूँ, बस मां!"

सावित्री ने हाथ बढाया और राजू का सिर सहलाने लगी। सुख का धीमा विस्तार उसका रोम रोम सींचने लगा। एक आसू ने अवतार लिया और उसकी आंखो से लुढक पडा। कितने दिनो में आया यह आंसू! इस अमोलक आंसू को सावित्री ने तर्जनी अंगुली की पोर पर थामा और कुछ ऐसे ताकने लगी जैसे यह कोई चमकता नगीना हो। फिर कुछ सोचती सी अपने से ही बोली, "कितना अच्छा रहा श्रीकात चला आया वर्ना बच्चो के बेघर होने मे क्या देर थी?"

श्रीकात कलकत्ता से लौटा था। उसके मालिको की एक सीमेंट फैक्टरी यहाँ थी—इस राजस्थानी कस्बे में। सयोग सधा कि उससे तबा दले को पूछा गया, तो उसने इन्कार नहीं किया। श्रीकात ने अपने बहनोई के सरक्षण म पढ लिखकर नौकरी ही नहीं की, ब्याह भी कर लिया था। उसकी कलकत्ते की पत्नी बढी ब्याहता साथ ही चली आई। फैक्टरी से मिले क्वाटर मे उसकी नई गृहस्थी जमने लगी। यहीं से गाहे-बगाहे वह अपने बिछुड़े हुए भैया-भाभी से मिलने आने लगा। अपने पीछे छूटे ससार की बेतरतीबी देखते देखते वह पसीजने लगा। ऐसी भावुकता न जाने कहाँ से बटोरी थी कि एक दिन अपने भैया से कह बैठा, "क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम फिर एक ही चूल्हे पर पकाया खाना साथ साथ खाने लगें?'

शायद पिनक मे ही रतन बाबू ने हामल भर डाली। इस पर सावित्री की स्त्री बुद्धि मे खटका-सा हुआ था लेकिन भोले देवर की निरीह सन्दायता के आगे चुप रह गई। इसके सप्ताह भर बाद ही श्रीकात सबको यहाँ ले आया था। रतन बाबू को राजी कर हलके-फुलके काम के लिहाज

से एक लॉण्ड्री के काउण्टर पर बिठा दिया। पहले कुछ दिन आराम से कटे, लेकिन थोड़े दिन बाद सावित्री का खटका सच्चा हुआ। श्रीकांत और उसकी ब्याहता के बीच डरावनी चुप्पी के धनुष खिंचने लगे। श्रीकांत सहमा सहमा नज़र आने लगा। इधर रतन बाबू ने धोबी की दुकान पर चढ़कर खानदान की नाक कटवाना कबूल न करते हुए नौकरी छोड़ दी। दिन भर घर बैठकर बीड़ियाँ फूंकने लगे। काम के नाम पर दिन में तीन चार बार अपने लिए खुद ही गैस के चूल्हे पर अफीम के छूनरे उबाला करते। ये छनरे खुद श्रीकांत को लाकर देने पड़ते। अपनी भाभी को थैला पकड़ाकर वह कहता, "भाभी, जब तक बन सके धीरज मत छाडिएगा। आप बड़ी हैं, वह छोटी—यही समझ लें। फिर मेरी बात दूसरी है, वह आप सबको धीरे धीरे ही अपना मान सकेगी न!"

सावित्री श्रीकांत का भीतर-भीतर टूटना देख रही थी। उस पर जब-तब दुतरफा बौछारें बरसने लगी। एक तरफ उसकी अधिकार सजग पत्नी थी, तो दूसरी तरफ बड़प्पन की ग्रंथि से जकड़े भैया—जिन्हें पग पग पर अपना और खानदान का अपमान नज़र आता। आखिर एक दिन श्रीकांत के भैया विदा हो गये। श्रीकांत ने बहुत विनती चिरौरी की, पर अपने घर उन्हें रोक नहीं पाया। शहर का पुश्तैनी मकान उसी के कहे से भाड़े चढ़ाया गया था, ऐसे में उन्हें बेघर कहाँ भेजता? फिर अपनी ही पहल से यह पिछवाड़ा लेकर भैया भाभी को बसा डाला उसने। थोड़े दिनों में ही सावित्री ने पाया कि कस्बा उसकी गृहस्थी चलाने के लिए सस्ता और सरल रहेगा। अपने पतिदेव को सावित्री ने बड़ी हील-हुज्जत के बाद मनाकर यहीं रोक लिया। रतन बाबू शायद इसीलिए मान गए कि छोटी ही सही, पुश्तैनी मकान भाड़े चढ़ाने से एक बँधी बँधाई आय घर बैठे ही शुरू हो गई। बदले में यहां किराया नाममात्र का था।

"यहाँ फिर भी आराम रहेगा।" हारकर श्रीकांत ने यही कहा था। सावित्री भाँप गई कि श्रीकांत अपना ही दिल बहला रहा है। बस एक श्रीकांत ही समूची दुनिया में सावित्री के लिए किसी भरोसे का नाम है, लेकिन हज़ार हज़ार बार सोचे बिना नहीं। उसकी सीमाएं निर्धारित हैं, जिससे थोड़ा भी पार निकलने पर उसके खानदानी भैया का अपमान हो

जाता है। अपने भतीजो के लिए एक बार कपड़े ला देने पर उसके भया चिहुँक पड़े थे, "मैं मरूँ, उससे पहले किसी को मुझ पर मेहरबानी दिखाने की जुरत नहीं करनी चाहिए समझी।"

मौजा बिसायतन के मुर्गे ने बाँग दी—कुकड़ू कूँ! उधर मस्जिद के माइक पर अजान सुनाई दी—अल्ला हो अक्बर! भोर होने लगी है। कुछ देर में पड़ोस के जगी जाल-वृक्ष में रातबासा लिए बैठे पखेरू पंख फड़फड़ाएँगे और चोंच खोलेंगे। भोर अपने एक-एक लक्षण से सावित्री को पुकारने लगी। यह भोर इसी के लिए तो सावित्री ने रात आँखों में निकाली है।

"उठ भई सावित्री छः बजे पहुँचने का जो कौल दिया है तूने हवेली से।" सावित्री ने खुद से ही जतलाया। हवेली—अलसवेरे ही जैसे सावित्री के मुँह में मुट्ठी भर नमक भर आया—थू! थूका उसने, "छि छि कैसी ओछी हरकत की दूसरों को आदमी क्यों नहीं समझते ये लोग?"

कहाँ तक काबू में रखे सावित्री! कोई इस तरह छीलने पर ही उतर आए तो क्या उफ् भी न करे? पहले दिन हवेली पहुँचने पर इसी बड़ी सेठानी ने बेशर्मी से पूछा था, "सच है क्या री सावत्तरी, कि तेरा घरवाला धेला भी नहीं लाता। तू उसे बिठाकर खिलाती है?"

सावित्री चुप रही, तो सेठानी अपनी जानकारी का बखान करने लगी, "मैंने यह भी सुना है कि तेरे ब्याह में ससुराल से तुझे तकड़ी में तोल कर सोना मिला था।"

"समय समय की बात होती है न! बेमन से हँसकर टालना चाहा सावित्री ने।

"कुछ धरा है, या खा पी लिया सारा? उलीचे से तो कुएँ भी खाली हो जाते हैं।" इस बार चाकू-सा लहलहाया सेठानी ने, फिर भी सावित्री ने मैदान नहीं छोड़ा और मुस्कराकर काम में उलझ गई।

"कल कल हद कर दी इसने!" सावित्री के फिर से शूल गड़ने

लग।

साँझ हुए सावित्री घर लौट रही थी। कमरे से शॉल लेकर निकली, तो यही सवाल पूछनेवाली सेठानी ठोंगा लिए खड़ी थी। कुछ देर पहले सावित्री ने एक पिलपिले बच्चे को थाली पर अघाए बैठे देखा था। उसके आगे घेवर का टुकड़ा पड़ा था, जिसे वह खा नहीं बल्कि घूर रहा था। जूठा छोड़कर उठा, तो किसी ने उसे सावित्री के सामने ही कान पकड़कर वापस बिठाया था, "खा, खाना पड़ेगा लिया तब नहीं देखा? असली घी का घेवर है, जूठा छोड़कर कुत्ता का डालने को नहीं है।"

सावित्री ने ठोंगा हाथ मे लिया कि उसकी नजर थाली पर पड़ी। उसमे मामूली जूठन थी और बच्चे का अता पता ही नहीं था। अगले ही पल सावित्री ने ठोंगा खोलकर देखा—छि! ठोंगे मे वह टुकड़ा मौजूद था। सामने सेठानी मुस्करा रही थी, "सावत्तरी ।"

"ठीक हुआ कि मैंने बड़ी सेठानी से कुछ नहीं कहा।" बिस्तर छोड़ कर उठते हुए सावित्री सोचने लगी, "रौंस निकालकर सारे रास्ते बन्द कर लेती। उम्मीद तो सातवें दिन फलनी है, तीसरे दिन ही बात बिगड़ जाती। क्या पता, तीन दिन की महनत भी अकारथ जाती! एक बार जस लेकर ब्याह की रसोई सँभालकर दिखा द, तो यही सेठानियाँ गज करती आएँगी मेरे पीछे पीछे फिर कोई पूछेगा तो बताऊँगी कि मेरा खसम ।"

कदम बाहर रखते ही ज्वाल के पखेरुओ न कठ खोलकर सावित्री का स्वागत कर डाला। सावित्री ने मुस्कराकर इस सामूहिक चहक की दिशा म देखा। बेशक अपनी काया सावित्री को भारी भारी लग रही थी, पर चहक सुनकर उसका मन पखेरुओ की पाँखो सरीखा ही हलका हो आया। दरवाजे पर खड़े खड़े पलटकर उसने अपने तीनो बच्चो को निहारा और रसोई की तरफ पानी गर्म करने की मशा से चल दी।

कुछ देर बाद सावित्री कमरे मे लौटी। कैलाश का सिर सहला-सहलाकर उसे ऐसे पुकारने लगी जैसे कल की भोर भी आज ही जगा लेगी, "उठ, उठ जा मेरे लाल! देख, सवेरा निकल आया।"

पुण्य-स्मरण

यह 'क' शहर भी बड़ा अजीब शहर है।

इस अधकचरे शहर का पता नहीं क्यों जिला मुख्यालय का दर्जा दिया गया है। मुझे यह बात ही बहुत कठजनी लगती है, पर जाएँ तो जाएँ कहा ? यह नौकरी जो करनी है।

सारा दिन जूते घिसने के बाद यह कमरा मिला है, कमरा क्या तबेला कहिए। ऐसे निमाण किया गया है जैसे आदमी नही, घोड़े आएँगे इन्हें किराए लेने। न हवा के लिए खिड़कियाँ और न कपड़े लटकाने को खूँटियाँ। दरवाजे इतने नीचे कि मेंह बरसा नहीं कि पानी अन्दर! उस पर किराया! मत पूछिए, सुनते ही कलेजा मुँह को आता है।

मैं अकेला नहीं हूँ यहाँ। इस कतारबद्ध दड़बा मे हम पूरे चौदह किराएदार हैं। दो तो मेरी ही श्रेणी के सरकारी कर्मचारी हैं, एक जन प्रनाय विभाग का पम्प ड्राइवर और शेष सब विद्यार्थी।

मैंने पहले दस दिनों में ही सबसे मेल मुलाकात बना ली। सुबह को दफ्तर पहुँचने की उतावल रहती है पर शाम फुरसतवाली होती है। हर कमरे से स्टोव्ह की गूंज सुनाई पड़ती है, जिसमें संगीत की गुंजायश निकालकर इसी वक्त पम्प-ड्राइवर एक कनस्तर बजा-बजाकर गाने लगता है—दड़बा के आगे, खुले मैदान में एक नल लगा हुआ है जो बन्द करने के बावजूद टपकता रहता है। नल के नीचे भीलवाड़ा की प्रसिद्ध पट्टी का एक चौकोर टुकड़ा पड़ा रहता है। नल खुलते ही इस पर पड़ती पानी की धार छितराने लगती है, ठीक उसी तरह जिस तरह हम सब दफ्तरों या

स्कूल कॉलेजों की ओर छितराते है।

शाम को हम अपनी-अपनी रोटियां बिना उतावल के सेंकते हैं और स्टोव्ह बन्द करने के बाद चौगान में इकट्ठा होते है। बनियानें खोल लेते हैं और उनसे गर्म जिस्मों पर हवा करते हैं और हाथों पर तो बेसब्री से मुंह से ही फूंके देने लगते हैं, ऐसे जैसे कोई खाने से पहले गर्म ग्रास ठण्डा करता हो।

पहले पहले कुछ दिन मुझे लगा कि अपने हाथों से रोटियां सेंकने पर भूख खुल जाती है। इन दिनों में खाने बैठने का लुत्फ ही कुछ और रहा। अब लगता है कि भूख तो लगती ही होगी, पर लुत्फ जाने कहां मर-खप गया।

यहां इस तरह की व्यर्थ अनुभूतियां होती ही रहती हैं।

वह कोई ऐसी ही अनुभूति या क्षण रहा होगा, जब देवधर मेरी ओर कुछ याद करता सा आ रहा था। हम चौदह लोगों में कौन किसका कम या ज्यादा शुभचिंतक है यह तो मैंने तोलः परखा नहीं था, पर इस देवधर का भावपक्ष मुझे शुरू से ही कुछ अपने प्रति अधिक उदार प्रतीत हुआ था। पता नहीं मेरा कौन सा रूप उसे आदरणीय लगा कि वहां एक दूजे को नाम से पुकारने की खुली परम्परा के विपरीत वह मुझे 'भाई साहब' कहने लगा था। अवस्था में वह जरूर मुझसे कुछ छोटा होगा, पर यह कौन सी एसी बडी बात है भला।

खर, तो देवधर अपनी ठौर से छूटे हुए तीर की तरह चलकर मेरे करीब पहुँचा। इतनी ही बेसब्री से बोला, "भाई साहब, आप शिक्षा विभाग में हैं न ?"

"हाँ, देवधर।" मैं मुस्कराया, "यहाँ तो सभी जानते हैं यह बात।"

"जानते तो हैं, लेकिन ।"

"लेकिन क्या, देवधर ?"

"यही कि एक बार पूछकर तसल्ली कर लूं।" वह लजाना-सा बोला। फिर अपनी गर्दन नीचे झुका ली।

मुझे यह उसका भोलापन जान पड़ा और मैं मुस्कराता रहा।

"भाई साहब, एक जरूरी पूछ-ताछ करनी है।" वह मुंह पर मलिनता लिए बोला। मुझे अपने मुस्कराते रहने पर पछतावा होने लगा।

मैंने गम्भीर होकर उसके मुँह की तरफ देखा।

"मृत सरकारी कर्मचारी की सन्तान ।" कहकर मेरे और करीब सरक आया और उसकी आवाज हाथ में छूटे काँच के बरतन की किरचियाँ-सी बिखर गईं।

देवधर !" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा क्योंकि अचानक ही वह मुझे कुछ भयभीत नजर आया।

वह चुप।

"देवधर तुम कुछ पूछ रहे थे न ! क्या हुआ तुम्हें अचानक ?"

वह फिर भी चुप।

'हाँ, मृत सरकारी कर्मचारी की सन्तान के बारे में बोलो तुम्हें क्या पूछना था ?" मैंने देवधर को स्नेहपूर्वक और तसल्लीकारी लहजे में झकझोरा, पर वह तो जैसे पथरा गया था।

भीतर ही भीतर मैं झुँझलाने लगा।

मैं थोड़ा पीछे सरककर खड़ा हो गया और देवधर मुड़कर लौट गया। उसे जाते देखकर मुझे लगा कि उसके मन की कोई तकलीफ सिर्फ चेहरे पर ही नहीं, उसकी आकृति पर भी हावी हो गयी है।

इसके दूसरे दिन। नीचो छत वाले इन दड़बों की सामूहिक छत हम सबका सामूहिक शयनागार भी है। हम बाउण्ड्री वाल पर पैर रखकर बिना सीढ़ियों की इस छत पर पहुँच जाते हैं और एक दूजे के बिछावन भी ऊपर खींच लेते हैं। फिर रात होती है तारे होते हैं, शुक्ल पक्ष हो तो चाँद भी होता है और नित की नित बासी होती जाती बातें दोहराते हम होते हैं। इन बातों में नौकरी, सिनेमा मार पीट के अलावा भी कुछ होता है जो यहाँ बताना मुनासिब नहीं जान पड़ता। हाँ संक्षेप और संयत भाषा में उसे स्त्री पुरुष सम्बन्धों की गुप्त बातें कहकर काम चलाया जा सकता है। इन घिस घिसकर बदशक्ल हो चुकी और, और होती जा रही बातों के प्रति कुछ उकताहट हो, तो वह फकत मुझमें ही ढूँढी जा सकती है। पर मेरी यह उकताहट इतनी अभिजात्य अभी नहीं कि यहाँ रहना ही असम्भव जान पड़े।

कल देवधर के कुछ कहते कहते अनमने लौट जाने से मेरा मन भी

अभी तक अनमना था। मैं खा पीकर बाहर निकल गया था और लौटा तब तक भाई लोग छत पर पहुँच चुके थे। पम्प ड्राइवर एक हरियाणवी राग गा रहा था, जिसकी भाई लोग कुछ ज्यादा ही जोश से दाद दे रहे थ। लगता था कि तारो के मद्धिम उजास म हर कोई अपन मन की गठरी खाल चुका था। हरियाणवी रागें अपन जिस खिलदडपन के लिए प्रसिद्ध हैं, ठीक वही स्वाद पम्प ड्राइवर के गाने का था। चाहे तो कोई नाक भौं भी सिकोड ले इस पर।

मैंने अपना बिछावन झुड से कुछ दूर हटकर बिछाया और इस मौज-मस्ती म आज शरीक न हो पाने की माफी माग ली।

कुछ देर हुई कि गली के उस पारवाले अपन मकान की छत पर खडे होकर वकील साहब ने ऐतराज उठाया कि यह कोई लफगो का मोहल्ला नही, जो छत पर चढकर शार मचाया जाए।

"चुप करो !" गाने और सुनने वाला का कही गई इस रीस भरी आवाज से मैं चौक गया। यह तो देवधर की आवाज थी। मुझे अचम्भा हुआ कि देवधर इस तरह चीख भी सकता है।

"देवधर ।" मैंने जोर से पुकारकर कहा, "तुम यहा चले आओ।"

पर वह अभी भी सबको चुप करने म सचेप्ट रहा।

"इस वकील की तो ।" यह सनसनाती उक्ति अँधेरे म किसी न तलवार सी लहरा दी।

'देवधर ।" मैंने फिर हाक लगाई।

इस बार उसन सुना और मैंने देखा कि वह आ रहा था। इतना उजास नही था कि उसके चहरे की लकीरे पढी जा सकती, पर उसका गुस्सा उसके चाल से ही प्रकट था। वह आकर मेरे बिछावन पर टूटी डाल की तरह गिर पडा।

'ये शोर मचाते हैं, तो तुझे क्या ? तू अपना खून क्या जलाता है ?"

वह नही बोला। मैं उसे गौर से देखने लगा। देखता क्या उसके मौन मे कुछ सुनने की चेप्टा करने लगा। उधर गाना खत्म हुआ और तालिया बजने लगी। वकील साहब पैर पटक्ते नीचे चले गए होगे।

"तुम्हे गाना अच्छा नही लगता ?" मैंने पूछा।

"मैं तंग आ गया हूँ, पर कहाँ जाऊँ ?" उसने उत्तर दिया।

"कहाँ जाना चाहते हो तुम ?"

"भाई साहब इससे तो ठीक था कि भेड़ें चराता, माटी खोदता और मजदूरी करता ।"

मैं उसकी इन असंगत बातों में कुछ संगति खोजने लगा और अचंभित रह गया।

'भाई साहब, मैं सचमुच तंग आया हुआ हूँ वह फिर भी चोखता-सा बोला, 'आपसे बात करनी चाही आप भी मुझ पर हँसने लगे ।"

"देवधर, मुझे कुछ पता तो हो कि बात क्या है फिर भी अनजाने ही मैंने कुछ हलका-पतला कह डाला हो तो मुझे माफ कर दो भाई !" मैं उसे विश्वास में लेने को लालायित हो गया और खुले मन से बिना कसूर की शिनाख्त किए ही माफी माग ली।

वह तब भी चुप।

हा, याद आया मुझे देवधर, तुम पूछ रहे थे कि मृत सरकारी कर्मचारी की संतान ऐसा ही कुछ था न ? बोलो वह क्या बात थी ?'

'हा, भाई साहब मैं ही हूँ वह संतान।" वह बोला।

"तुम ?"

'हा, मेरी मा सरकारी स्कूल में चपरासिन थी।"

'पर अब इससे तुम्हें क्या करना है ?"

'मैं जल्दी से जल्दी नौकरी पाना चाहता हूँ। मुझे इतने दिनों पता ही नहीं था कि नौकरी में रहते हुए मरनेवाले सरकारी कर्मचारी की किसी एक संतान को सरकार नौकरी देती है ।"

"हा यार यह है तो सही। मेरे दफ्तर में ही एक ऐसा मामला देखा है मैंने। इस बार मैंने भी उत्साह से हामी भरी।

"तो यह सही है, भाई साहब ?" देवधर उठ बैठा।

'हा देवधर ।"

उधर भाई लोगों के झुण्ड में से हँसी का तूफान उठा।

"लेकिन तुम तो अध्यापक के प्रशिक्षणार्थी हो !" मैंने देवधर को और टटोलना चाहा।

"इसमे तो यह पूरा साल लगेगा।" वह सहमा सा बोला, "फिर क्या गारण्टी है कि प्रशिक्षण मैं पूरा कर लूगा और कर भी लिया तो हाथो-हाथ मास्टरी मिल जायेगी !"

"भाई साहब " वह फिर बोला, "आपको कसे बताऊँ, मुझे अब नौकरी की सख्त जरूरत है। मेरे पिता मुझे जन्म देते ही एक्सीडेंट म मर गए थे। मुझे उनकी शक्ल तक याद नही फिर माँ ने मुझे किसी तरह पाला पोसा और खुद सरकारी स्कूल म चपरासिन लग गई। अचानक उसे भी बीमारी ने दबोच लिया और आधे-अधूरे इलाज से वह बच नही सकी। उसे मरे बारह बरस हो गय हैं। मुझे रिश्तेदारो ने यहा तक पहुँचा दिया अब आगे कहाँ जाऊँगा ।"

"देवधर!" मुझे उसे तसल्ली देने के अपने अन्दाज का खोखलापन साफ नजर आन लगा, पर तब भी इसके सिवाय मेरे पास क्या था ? मैंने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

कुछ देर की चुप्पी के बाद वह फिर बोला "मुझे दो तीन दिन पहले ही पता लगा कि मुझे नौकरी जल्दी ही मिल सकती है तो इस आधार पर कि मरी माँ नौकरी म रहते रहते ही मरी थी मैं उसी माँ का तो बेटा हूँ।"

उसकी पूरी बात सुनकर मेरे उत्साह की चिंदियाँ उड गईं। बारह वर्ष से अर्से पहले ऐसा कोई नियम नही था, और नियम बनने के पूर्व की तिथियो के किसी मामले पर विचार सम्भव नही होता। देवधर को आस बँधाने वाले के अधूरे ज्ञान पर मन ही मन कुढने के अलावा मेरे पास कोई चारा नही बचा, पर तब भी मेरी हिम्मत नही पडी कि उसकी उम्मीदो पर इसी क्षण पानी फेर दू।

"भाई साहब, क्या हुआ मेरे दसवी ग्यारहवी पढने से इन शहरो ने मुझे मेहनत-मजदूरी से भी खो दिया।" देवधर फिर बासन लगा।

अबकी बार मैं चुप। क्या कहता। देवधर जस अपने मुह से मेरी बात कह रहा था। फर्क था तो फक्त इतना कि मुझे अचानक बाबूगिरी हाथ लग गई थी। मैंने सोचा, मेरी यह अमीरी और बडप्पन था, जिसका देवधर के निकट इतना बडा सम्मान था।

देवधर यकायक चुप हो गया। तसल्ली देने के लिए मुझे कई बातें सूझी, पर मैं कह नहीं पाया। चुपचाप, देवधर की अंधकार में डूबी हुई आकृति में उसका चेहरा ढूंढने लगा। कहीं से अवांछित बादल चले आए थे और तारों का उजास भी अब गहरा गया था।

"भाई साहब आप अपने दफ्तर के मामले की पूरी पड़ताल करना। मुझे माँ की वजह से नौकरी मिल सकती है। माँ नौकरी करते करते मर गई थी। बात पुरानी है, कहीं इस वजह से तो नहीं शायद इस मामले पर विचार हो सकता है। उस वक्त माँ के बालिग सन्तान थी ही नहीं। अब मैं हूँ तो सरकार नौकरी दे ।"

उधर भाई लोग न जाने किस बात पर एक बार और ठहाकों से आसमान छू रहे थे। मैंने उधर देखा। वकील साहब के रोशनदान से गली में छिटकता बल्ब का उजास भी अब शेष नहीं था। वे शायद तंग आकर सो गये थे।

भाई लोगों पर हँसी के दौरे पड़ रहे थे। ठहाके, और ठहाके गूंज रहे थे।

देवधर ने निढाल होकर अपना सिर मेरी गोद में रख दिया था। मैं उसके रूखे सिर में धीमे धीमे अँगुलियाँ चलाने लगा। क्या इस पूरे साल सारी दुनिया में जो साल देवधर को समर्पित कर मनाया जा रहा है, देवधर को इसी तरह निढाल रहना है।

देवधर ने एक बार सिर उठाया और बुदबुदाते हुए कहा, "भाई साहब, मेरी माँ स्कूल में चपरासिन थी ।"

नायक-नायिका

उससे आज टालना नहीं हो सका। फलत वह सिनमा देखने जा रहा था, पत्नी को साथ लिए। उसकी चाल म तेजी थी जबकि पत्नी सुस्त सुस्तचल रही थी। जब जब उसका पत्नी के साथ चलने का काम पडता है, यही शिकायत रहती है। दोना के मध्य एक फासला बनता-मिटता रहता है।

ठहर ठहरकर उसे यह फासला पाटना होता है, लेकिन यह फिर बन जाता है।

"मुझसे आपकी रफ्तार स नहीं चला जाता। तागा ले लो।" पत्नी ने चलते ही कहा था।

'अरे कैसी बात करती हो, साथ का लुत्फ तो पैदल चलने पर ही आता है!" कहकर वह पत्नी म तांगा भाडा बचानेवाली गृहस्थिन सुलभ समझ ढूढन लगा था। वह पैदल चलने से इकार करने में बच्चा की तरह मचलने लगी, तो इसी बात को इस बार फामूले की शक्ल म इस्तेमाल किया, "पैदल चलने का आनन्द निराला होता है। झूमते टहलते जा रहे हैं, और फिर तुम कहोगी तो आते हुए तांगे म चले आएँगे।"

फटाफट बोल गया वह। फिर सोचने लगा, 'यह अपनी अरूरत स ज्यादा भाषा का महत्त्व नहीं समझती। यह बाद मे जरूर पूछेगी कि निराला आनन्द क्या होता है?'

हाँ, इसके आनन्द का अर्थ बहुत सीमित है और मुझम अलग भी इस अरसे म भी एकाकार नहीं हो पाए हैं। यह ऐसी व्यथा है जो मेरे साथ

नहीं। वह उसे यूँ भी उलाहना देती है कि वह हर वक्त अपने दोस्तो में मशगूल रहता है। पत्नी के चेहरे पर उसे लगा ढेर सारी मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं।

अच्छा हुआ, इसी वक्त घण्टी बज उठी। लोग दरवाजे पर जुटने लगे।

"यार, मैं स्कूटर यूँ ही छोड़ आया हूँ तुम सब ठहरना, मैं अभी आया।" केसरी बोला और मुड़कर सीढ़ियाँ उतरने लगा। भीड़ हाल में समा गई।

वे तीनों बाहर खड़े रह गए। उसकी पत्नी अब केसरी की पत्नी के ऐन पास खड़ी थी और वह थोड़े फासले पर दूसरी ओर देखता खड़ा था।

"चलो एक एक कप चाय पी लें।" केसरी की पत्नी ने ऊँचा बोलकर प्रस्ताव रखा और बिना किसी सहमति की प्रतीक्षा के कैंटीन की ओर मुड़ गई। उसकी पत्नी ने विस्तृत आँखों से उसे घूरा। उसने आँखें फेर लीं।

"केसरी ने बहुत देर की, न?" अपने को सामान्य करने की दिशा में बढ़ने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा।

"सिगरेट पी रहे होंगे मेरे साथ होने पर जनाब को यह सबसे बड़ी मुसीबत होती है। मैं इन्हें सिगरेट नहीं पीने देती।" अंतिम वाक्य का केसरी की पत्नी ने काफी तल्खी से कहा।

"आप उसे सिगरेट पीने से क्यों रोकती हैं? इतनी क्या बुराई है?" उसने कहने की सोची पर कहा नहीं गया।

"मैंने ठीक अनुमान लगाया था आप काफी गम्भीर मिजाज के आदमी हैं।" श्रीमती केसरी चाय के पैसे देकर पलटते हुए कहा।

उसने चुपचाप सुना। यह बात किसी दूसरे मौके पर सुनने को मिलती तो खुशी होती। फिलहाल ताने की तरह लगी।

"अभी पिछले दिनों इन्हें दौरा पड़ा।" केसरी की पत्नी जैसे उसकी [illegible]रता के अनुरूप हो रही हो, बोली, "डॉक्टरों ने कहा कि इन्हें खुश [illegible] चाहिए। [illegible]ना, इन्हें दिल की बीमारी नाखुशी से नहीं हुई। [illegible]न हैं। शराब और सिगरेट से यह हालत बनी

केशरी उसका कोई ज्यादा करीबी दोस्त नहीं है। पर इस वक्त केशरी को उससे हाथ मिलाता देखकर उसके पीछे आ रही महिला ने भी उससे नमस्ते की।

"यह हमारी श्रीमती हैं।" केशरी ने उस महिला का परिचय दे डाला और उसका भी?

अब वे चार हो गये और शो खत्म होने की प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच केशरी ने किस्सा सुनाया कि कैसे वे भीड़ देखकर पहले निराश हुए, फिर उसकी श्रीमती जी ने अपने तजुर्बे से 'ब्लैकियर' ढूंढा।

"ये अक्सर आपके बारे में बात करते रहते हैं।" केशरी विश्राम लेने लगा, तो श्रीमती केशरी बोली।

"मेरे बारे म ?" उसने चौंककर पूछा।

उसे ऐसी बात की केशरी से कभी उम्मीद नहीं थी। केशरी की पत्नी से तो पहली मुलाकात है। केशरी अपनी पत्नी के सामने क्या बात कर सकता है?

"क्या कहता है यह?" उससे काफी कठिनाई से पूछा गया।

"यह चाहे कुछ भी हो, लेकिन मुझे आपसे मिलकर खुशी हुई है।" श्रीमती केशरी बोली।

उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से केशरी को देखा।

"अरे, कुछ नहीं कहा भाई बस, तुम्हारे सुनाए हुए एक दो लतीफे इन्हें भी सुना दिए और तुम्हारा नाम भी बता दिया।" केशरी एकमुश्त बोल गया और जैसे यह कोई लतीफा ही हो, ठहाका लगाकर हँसने लगा।

वह स्तब्ध हो गया।

केशरी और वह मिलने पर आपस में 'नानवेज' लतीफे सुनते-सुनाते हैं। उसे पिछली मुलाकात म अपना सुनाया हुआ ऐसा ही एक लतीफा याद आया। फिर उसके लिए उन दोनों के सामने देखना भारी हो गया। वह एक आला किस्म का अश्लील लतीफा था। उसे लगा कि उसके कपड़े तार-तार हो गए हैं और छिपानेवाले सारे अंग बाहर झाँकने लगे हैं।

आखिर एक उड़ती नजर उसने अपनी पत्नी पर डाली। वह उदास और अनमनी दीख रही थी। पत्नी को इस वक्त किसी का मिलना अच्छा

नहीं। वह उसे यूं भी उलाहना देती है कि वह हर वक्त अपने दोस्तों में मशगूल रहता है। पत्नी के चेहरे पर उसे लगा, ढेर सारी मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं।

अच्छा हुआ, इसी वक्त घण्टी बज उठी। लोग दरवाजे पर जुटने लगे।

"यार, मैं स्कूटर यूं ही छोड़ आया हूँ तुम यह ठहरना, मैं अभी आया।" केसरी बोला और मुड़कर सीढ़ियाँ उतरने लगा।

भीड़ हाल में समा गई।

वे तीनों बाहर खड़े रह गए। उसकी पत्नी अब केसरी की पत्नी के एन पास खड़ी थी और वह थोड़े फासले पर दूसरी ओर देखता खड़ा था।

"चलो एक एक कप चाय पी लें"

केसरी की पत्नी ने ऊँचा बोलकर प्रस्ताव रखा और बिना किसी सहमति की प्रतीक्षा के कंटीन की ओर मुड़ गई। उसकी पत्नी ने विस्तृत आँखों से उसे घूरा। उसने आँखें फेर लीं।

"केसरी ने बहुत देर की, न?" अपने को सामान्य करने की दिशा में बढ़ने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा।

"सिगरेट पी रहे होंगे मेरे साथ होने पर जनाब को यह सबसे बड़ी मुसीबत होती है। मैं इन्हें सिगरेट नहीं पीने देती।" अंतिम वाक्य को केसरी की पत्नी ने काफी सख्ती से कहा।

"आप उसे सिगरेट पीने से क्यों रोकती हैं? इतनी क्या बुराई है?" उसने कहने को सोची पर कहा नहीं गया।

"मैंने ठीक अनुमान लगाया था आप काफी गम्भीर मिजाज के आदमी हैं।" श्रीमती केसरी चाय के ने पैसे देकर पलटते हुए कहा।

उसने चुपचाप सुना। यह बात किसी दूसरे मौके पर सुनने को मिलती तो खुशी होती। फिलहाल ताने की तरह लगी।

"अभी पिछले दिनों इन्हें दौरा पड़ा।" केसरी की पत्नी जैसे उसकी गम्भीरता के अनुरूप हो रही हो, बोली, "डॉक्टरों ने कहा कि इन्हें खुश रहना चाहिए। मैंने सोचा, इन्हें दिल की बीमारी खामखाँ से नहीं हुई। ये खुश तो पहले ही बहुत हैं। शराब और सिगरेट से यह हालत बनी

इनकी। मैंने दोनों बन्द कर दी।"

"दिल की बीमारी और केनरी का ?" उसने अचम्भे म पूछा, उसने कभी बताया तक नही ?"

उसे लगा कि अब वह अपनी झेंप से मुक्त हो गया है। फिर पूछा, "उसे कब से है यह शिकायत ?"

"हमारी शादी के साल भर बाद से ही। तब मैं मायके गई हुई थी। पीछे से हुआ सब शायद मेरी याद मे हुआ हो।' कहकर श्रीमती केनरी ने विचित्र ढंग से आँखें झपकाईं और खुलकर हसी।

केनरी सीढ़ियाँ फांदता आ रहा था। उसे केनरी को लेकर डर लगने लगा। इसका दिल कमजोर है यूँ कूद कूदकर नही चलना चाहिए। पर केनरी भरपूर मस्ती मे दीख रहा था।

"सॉरी वेरी सारी क्या हुआ कि निचले दर्जे म मेरा एक दोस्त फिल्म देख रहा है वही मिल गया।' केनरी ने सामूहिक क्षमा-याचना करनी चाही।

"मैं ठीक कहती हूँ तुम्हारे सब दोस्त निचले दर्जे के हैं।" केनरी की पत्नी ने तुनककर कहा। यह बात मजाक मे थी, या गम्भीरता से की गई, उसे कुछ निष्कर्ष हाथ नही लगा।

"चलो, चलो पिक्चर शुरू हो चुकी है।" केनरी अनसुनी करता बोला।

केनरी की बात सही थी। फिल्म शुरू हो चुकी थी। अँधेरे म केनरी और उसकी पत्नी एक ओर बढ गए। वह टार्च से इंगित कुर्सियों की ओर पत्नी का हाथ थामकर बढता रहा। और सीट पर बैठते ही, पता नही किस भावावेश म उसने पत्नी का हाथ खींचा और उसकी कलाई को हल्के से चूम लिया।

"चलते वक्त तो वे दोनो साथ नही होगे न ?" पत्नी ने कान के पास पूछा।

"आँख बचाकर निकलेंगे " उसने जवाब दिया और फिल्म देखने लगा।

लीला

"ह—ह—हऽऽ !"

मानो बिना अंतराल के तोप छूटी कहीं। कानों के मार्ग अट्टहास भीतर तक पहुंचा, लोगों का कलेजा ठौर छोड़ने लगा। बालकों की तो चीख ही निकल पड़ी। कुछ लोग अपनी-अपनी ठौर खड़े हो गए थे, उन्होंने बैठने में लत्ता की खेंही फाड़ लीं। गर्द का एक बादल उठा और बिखर गया।

माईक के मुँह वही हँसी फिर सुनाई पड़ी। हँसी के पीछे गरजते बोल, "मंदोदरी! तू नहीं जानती? मेरा नाम रावण है, महाबली रावण, रावण, जिसने देवताओं तक के नीबू निचोड़ रखे हैं!" (माफ करें, मेरे यहाँ की रामलीला के संवाद लेखक मुहावरेदार भाषा को कुछ अनावश्यक ही आदर देते हैं।)

इस बार लोग भयभीत नहीं हुए। परंतु कई, जो पहली दफा सोते ही रह गए थे, हड़बड़ाकर जाग गए। उचक-उचक्कर देखने लगे। क्या हो गया? लड़ाई झगड़ा तो नहीं! ऊपर के मोहल्लेवाले छोकरे बेहद कुबुद्धि।

लोगों का अनुमान सत्य निकला। उन्होंने रावण को पहचान लिया। बीकानेर से साला महाराज! उन्ह छोड मंच पर ऐसे पैर दूसरा कौन पटक सकता है भला! दद्दाओं की अंतिम पंक्ति तक को धरती काँपती महसूस हो। और, हँसने की तो बात ही निराली। बोलें, तो गले से गाले ही छूटें, "मंदोदरी! ह—हऽऽ !"

लाला महाराज की गिनाम्न हुन ही साथ प्रसन्न हो गए।

"वाह ! मजा आ गया। लाना महाराज के क्या कहने ! रामलीला म अगर रावण ढग का न हा, ता राम की कौन सी बिसात कि अक्ले रामलीला रच ले। रावण के बिना रामलीला फीकी धिक्कार ! एसी रामलीला को।" मरे बाजू बैठे एक दशक न भाले भोले ही यह गूढ़ ज्ञान प्रकट कर डाला।

मच पर मदोदरी विलाप आरम्भ हुआ। रावण उस रोता छाड़ अशोक वाटिका के लिए प्रस्थान कर चुका था।

विलाप चाहे कमा भी हो, गाने म आए बगैर जमता कहाँ है ! मच के एक बाजू बैठे ढोलकिये न थाप मारी। हारमोनियमवाले न सुर छेड़े। गवैये न गला खाला। मदोदरी की तो फरल मुद्र एँ !

और, अचानक सज्जनकुमार मच पर पहुँचा। कधे पर आज धनुष बाण नही थे। लकिन इससे क्या, दशक उसे दस बरस से पहचानते थे— राम ! हाँ, वही तो सदैव राम का पाट करता है। राम ने आज सादी वेशभूषा म आकर माईक पकडा। ढोलकिये ने जार से थाप मारी। हार मोनियम शात। गवैया चुप।

"हाँ ता सावधान कदरदान !" सज्जनकुमार की आवाज सुनाई पडी, "भक्त और भगवान की जय ! रावण के अभिनय से खुश होकर समाजीमलजी सिंघी ने पाँच रुपये भेंट किए। बोलो सियावर रामचन्द्र की जय !"

"जय" के साथ साथ ढोलक की थाप बजी—धडिंग !

मदोदरी विलाप फिर शुरू हुआ।

फिर बन्द हो गया।

सज्जनकुमार फिर माईक पर, "(धडिंग) हा ता, सेठ साहब फत्तू-मलजी की तरफ से ग्यारह रुपये सप्रेम भेंट। बोल सियावर "

इसी के साथ शोर उठा। लोगो ने मच से मुह फेरकर उधर देखा। दाईं आर भीड ऐसी हडबडाई जान पडी, मानो किसी ने पैरा म साँप छोड दिया हो। सदाबहार स्वयसेवक भागे। (सदाबहार स्वयसेवक हरेक छोटे बड़े शहर म हमेशा हाते हैं, जो बिना न्योते की प्रतीक्षा किए अपने

स्तम्भ पर आ डटते हैं) स्वयंसेवकों के हाथों में डंडे थे। डंडे फटकारते वे मौका-ए-वारदात पर पहुंचे।

साप नहीं था। कुन्दन भगी था। दर्शकों ने अब तक पहचान लिया था। पर वह आखिर चाहता क्या था?

"छोड़ो छोड़ो मुझे!" स्वयंसेवकों की मजबूत गिरफ्त में मरियल कुन्दन बर खा रहा था।

"बैठ जा चुपचाप!" नामी पण्डित जेठमल कुछ दूरी पर खड़े खड़े उसे फटकार रहे थे।

उधर मंच पर सज्जनकुमार और मंदोदरी, दोनों भौंचक रह गए। अचानक यह नयी रामायण कहां शुरू हो गयी! वादकों के हाथ ढोलक से चिपककर रह गए। हारमोनियम की हवा निकल गई। गवैया गाना भूल उठा।

लोगों को कुन्दन का अभिनय ज्यादा समय तक बांध नहीं पाया। जो उठ चुके थे, वे वापस बैठने लगे। स्वयंसेवकों ने उसे कुछ देर पकड़े रखा, फिर धक्का देकर अलहदा किया। धक्का खाकर कुन्दन चोट से तिल-मिलाए मकोड़े की तरह वापस उसी दिशा में लौटा। स्वयंसेवकों के करीब पहुंचकर उसने अपनी जेब में हाथ डाला। वापस निकाला, तो मुट्ठीभर रुपये। स्वयंसेवक अचम्भित हुए। अचम्भा तो उन्हें अभी और करना था। दस-दस के दो और रुपये का एक नोट छांटकर कुन्दन ने उनके सम्मुख कर दिया।

"ले जाओ!" वह मुंह नोचने की तरह बोला, "इस फतिय सेठ की हो माँ की ! कह दो, कुन्दन भगी की तरफ से रामलीला वालों को ग्यारह की ठौर इक्कीस रुपये मिले!"

बोलने के साथ-साथ देसी दारू का एक बासा भभका बाहर जेठमल पण्डित के नथुनों तक पहुंचा। नाक पर हाथ रखते उसने तुरंत एक ओटनी गाली दाग डाली। फिर किसी स्वयंसेवक से पुकारकर दस पर रुपये पकड़ लिए। रुपयों से किस बात की छुआछूत!

रुपये मंच पर पहुंचे।

सज्जनकुमार ने गला साफ किया। फिर, "(धड़िम) ता भ क्तो!

कुन्दन हरिजन की तरफ से, सती मदोदरी के नाम पर इक्कीस रुपये सादर-सप्रेम समर्पित। बोलो सियावर रामचन्द्र की जय!" घडिग!

"इक्कीस" का उच्चारण उसने ऊँचा भी रखा और पिछले घडिग के पश्चात एक बार और बोल डाला "इक्कीस रुपये!"

वही जगह। वही कौतुक। लोगो ने मुडकर देखा—अट्टहास मे लाला महाराज को मात देने मे सचेष्ट कुन्दन अपने हाथ पैर उठा-पटक रहा था, स्वयसेवक सावधान थे। तुरन्त पहुँचकर उसे काबू मे किया। और जबरन बिठा दिया। ऐसी खुशी का यह तिरस्कार! अपने लेखे तो कुन्दन ने दिल्ली ही फतह की होगी। पर स्वयसेवको का दिल जरा भी नही पिघला था।

मन्दोदरी का विलाप बामुश्किल अपने ढर्रे पर आया।

दर्शको के मन रमने लगे। सज्जनकुमार अपने असली ठिकाने पर पहुँचा। मच की बायी तरफ कनात मे एक खिडकी। दाताओ के नाम और नगदी के माईक तक पहुँचने का जरिया। मच पर आज राम का काई काम न था। उसके धनुप-बाण खूटी पर लटक रहे थे। इसीलिए राम इस अमूल्य खिडकी के मोर्चे पर डटा हुआ था।

धडाधड चार दानी पहुँचे। सज्जनकुमार ने नगदी हस्तगत की। नाम पूछे। एक गुप्त दान था। गुप्त-दान से सज्जनकुमार बेहद प्रसन्न! गुप्त दान का माहात्म्य तो और भी बडा। फिर मन्दी मे जितने चाहो, गुप्त दाना की घोषणा करो भले ही। जोश चढाने की कला मे सज्जनकुमार पारगत। लेकिन आज मन्दी नही थी।

"हैं! क्या? इक्यावन रुपये?'

मारने साड की तरह आकर एक ने खिडकी से सिर भिडाया। सज्जनकुमार ने झुककर दर्शन किए। किसने कहा दानवीर कर्ण मर गया?

"हाँ हा, इक्यावन रुपये!' दानवीर को सज्जनकुमार की सज्जनता पर क्रोध आ गया, 'इस मभी की यह औकात कैसे हुई? घर की औरतें तो सारे मुल्क का हँगा सिर पर उठाती हैं और यह लाट साहब हमारे सामने ताल ठोकता है! मैं भी देखता हूँ, कित्ती देर?"

दानवीर की बात सौ टच। कच्चे पाखाना का चलन अपने मुल्क से उठ थोडे ही गया है! आदमी का हँगा आदमी उठाए, इससे बढ़कर

अहिंसा और आजादी तो और क्या होगी ! गांधी बाबे का महत्त्व इस देश में निपट थोड़े ही जाएगा, कुन्दन के बहाने दानवीर के मुख पर सत्य की ध्वजा फहरा गई। रामलीला में रामराज्य का सपना पूर्ण हुआ जैसे।

अब और सज्जनकुमार से नहीं ठहरा गया। गिरते पड़ते मंच पर पहुँचा। निरन्तर घड़िग बजे। परन्तु इस दानवीर कर्ण का नाम इतना सस्ता न था। उसके गुणगान में ही माकूल मुद्राएँ न बना सके तो सज्जनकुमार की कला पर हजार लानत ! उसने गला भली प्रकार साफ किया। दोहे पढ़े। शेर पढ़े। नोटों को ज्यूटी में पकड़कर लहराया।

दो घड़िगों के पश्चात सज्जनकुमार की वाणी गूँजने लगी, "भक्त बड़ा या भगवान ! बोलो भक्तराज की जय ! माताओ एवं बहनो, बूढ़ो-जवानो, गोरो और कालो ! जिगर थामकर सुनो, अब इनकी बारी है। आपके गाँव के नामी, गिरामी सेठ साहब श्रीमान् फत्तूमलजी रामकथा और रामलीला के ममन ! आप गुणी और गुण के कदरदान हैं, इसीलिए सती मंदोदरी के मार्मिक अभिनय से अतीव प्रसन्न होकर, मंडली को इक्यावन हाँ सा इक्यावन रुपये अर्पित करते हैं। बोलो सियावर रामचन्द्र की जय !" घड़िग ! घड़िग ! घड़िग !

तीसरा घड़िग बजा और न बजा, रामायण शुरू। इस बार लोग हिले तक नहीं। परन्तु स्वयंसेवक अपना कर्तव्य नहीं भूले। तुरन्त सँभले। कुन्दन की स्मरण-शक्ति नदी में ओर बढ़ा दी थी, भूली बिसरी गालियाँ भी मानो उसके कण्ठों आन विराजीं। देशी दारू के भभके में सेठ साहब के परिवार का कान्ना कीचड़ हुआ। आवेश ने एक हरे नोट का पत्ता उछाला। स्वयंसेवक सजग थे उसे नीचे नहीं गिरने दिया। कुन्दन को निठाने के बाद वे मंच की तरफ लपके।

मंदोदरी अपनी भूमिका भूल गई। ढोलकिये ने जो थाप मारी, तो हथेली ढोलक के कलेजे जा लगी। वह भागा और खूँटी पर से दूसरी ढोलक उतार लाया।

घड़िग ! घड़िग !

"हाँ, तो सायबान कदरदान !"

सज्जनकुमार को कहीं से कुछ भी उधार नहीं लाना था। परन्तु

मन ही-मन सोचा उसने भी होगा, कि उसकी अग्नि परीक्षा है। उत्तीर्ण रहने पर मैनेजर साहब कुछ कसर थोड़े ही रखेंगे। बख्शीश की बोतल का काल्पनिक घूंट भरकर ही उसने इस बार माईक पकड़ा होगा।

धड़िंग! धड़िंग! धड़िंग!

मंदोदरी मंच पर ठहरे और न ठहरे, हारमोनियम और गवैया हट जाए भले ही, आज तो सज्जनकुमार और ढालकिया पर्याप्त होंगे। रामलीला आज व्यर्थ तामझाम से मुक्त हो चुकी थी।

कितनी देर?

फत्तूमलजी ने मसखरी नहीं की। च्यूटी-भर पगार का एक सरकारी भंगी याने सफाई मजदूर क्या खाकर उनके सामने ठहरता! मकोड़ा गुड़ की भेली खींचकर नहीं ले जा सकता।

अपने पास की नगदी तो फत्तूमलजी ने इक्यावन के मोर्चे पर ही लुटा डाली थी, परन्तु उनकी सांस का मोल किसन आंका था! नीचे झुककर उन्होंने कंकर उठाए और मंच पर फेंककर सज्जनकुमार को ताकीद की, "की कंकर सौ का नोट समझना! इस हरामखोर की अंटी के सारे बल निकाल डाल। सबेरे हवेली आकर कंकर गिन देना और रुपए लेते जाना!"

सज्जनकुमार ने बाअदब मुजरा किया। फिर मंच पर बिखरे कंकर चुगने लगा। अब कुंदन की जेब उघड़ते कितनी देर लगती? धड़िंग, धड़िंग! अटा चित्त!

मंदोदरी पसीने से भीग गई। ढोलकिये की कलाई झड़ गई। मैनेजर साहब मंच पर चढ़ गए। अगले दृश्य में अशोक वाटिका में दिखने को तैयार रावण अर्थात लाला महाराज, जोश के मारे पहले ही मंच पर दिखने लगे।

कुंदन ने कुर्ते की सारी जेबें फाड़ ली। कुछ नहीं निकला। मारे झल्लाहट के वह नीचे झुका और दोनों हाथ भरकर मंच की दिशा में मिट्टी उछाल दी। मंच का कुछ नहीं बिगड़ा। लोगों की आंखें रेत से भर गई। स्वयंसेवकों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। डंडे उठाकर जो लपके, फिर तो कुंदन को रामलीला मैदान की सीमा से आगे तक खदेड़कर ही विश्राम लिया।

आरती के थाल सज गए।

राम, रावण, सीता, मदोदरी, लक्ष्मण, हनुमान और मैनेजर साहब ने मिलकर फत्तूमलजी को ऊँचा उठा लिया। (मडली मे सचमुच की स्त्री एक भी नही थी) जयकारो के बीच मच पर ला उतारा। राम दरबार का दृश्य लगा। फत्तूमलजी की खातिर मूढा मँगवाया गया। भगवान राम के करीब बिठाकर उनकी तस्वीर उतारी गई। मडली का कैमरा बघराना आज सार्थक हुआ। दर्शक हदबदियाँ तोडते मच के किनारे तक आ पहुँचे। फत्तूमलजी का जीवन सुधर गया।

इन्ही क्षणो मे कुन्दन एक अँधेरी गली म कुत्तो और अपनी लडखडाहट से एक साथ जूझ रहा था। कदम नशे से नही, स्वयसेवको की मार से लड-खडा रहे थे। बेरहमो ने सारा नशा उतार डाला था। आखिर लडखडाहट सँभली नही, तो धराशायी हो गया। कुत्ते पहुचे और सूघकर चले गए। कुन्दन ने राहत की साँस लेकर आँखें मीच ली।

सवेरे ही उसकी घरवाली मेरे पास चली आई। मुझे छोड उसका दुखडा सुनता भी कौन? आँखें मीचने से लेकर बरामद होने तक कुन्दन के बुरे हाल सुनाकर उसने कहा, "कल ही पगार ली बताते हैं। घर पर चून के पीपा मे चूहे नाच रहे हैं और आप पहले ठेके और फिर रामलीला जा पहुँचे। दारू ने इनकी मत ही मार दी। नहीं तो क्या इतना भी नही जानते! इतने बडे सेठ के आगे हम नाकुछ लोगो का कैसा जोर? पर्वत से जाकर क्यो सिर फुडवाए! पर नशा कुछ सोचने देता तो सोचत!"

नशा! मैंने सोचा—अन्धे को भी दिखे जसी बात कि इस सत्यानाश की जड म नशे के सिवाय कुछ नही था। परन्तु नशे म क्या अकेले कुन्दन ही था? समूची रामलीला और उसके दर्शक क्या मदहोश न थे? और सबसे बढकर मदहोश कोई था, तो फत्तूमलजी! नशे की भी औकात होती होगी अपना अपना ही होता होगा नशा!

कुदन की घरवाली रोने बैठ गई। मैने उसे उठाया और लेकर मैनेजर साहब के समक्ष प्रस्तुत हुआ। उन्होने पूरा वृत्तात सुन लिया। कुछ देर शात रहे। फिर अथाह गहराई से बोलने लगे, "आप साथ चले आए ह, तो मान

की हुई दौलत
रखने के सिवाय दूजा रास्ता नही कि भगवान को भेंट।
लौटाई नही जाती।"
थ मे लिया।
लूगी के लपेटो से आजाद कर उन्होंने नोटो का बडल हु के आगे फेंक
तीन दस दस के नोट बेरहमी से खीचकर कुदन की पत्नी है।"
दिये, "उठा और चलती बन और मेरे पास कुछ भी नहीं।
धड़िग!
र यह आवाज
दूर या पास, ढोलकिया कही भी नजर नही आया। फि
कहा से आई?



मालचंद तिवाड़ी

जन्म 19 माच 1953



कृतियाँ

'पानीदार तथा अन्य कहानियाँ।

धड़न् (राजस्थानी) कहानी-संग्रह।

भोळावण' (राजस्थानी) उपन्यास।



शिखर (शिमला) की अखिल-भारतीय कथा प्रतियोगिता में कहानी 'पानीदार को प्रथम पुरस्कार।

'सारिका' तथा साप्ताहिक हिंदुस्तान' में कहानियाँ पुरस्कृत।



सम्प्रति राजकीय सेवा में।



सम्पर्क कानू बास, श्रीडूंगरगढ़।